ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 06 दिसम्बर 2015

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 06 दिसम्बर 2015 से 12 दिसम्बर 2015

मा.कु. –10 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 49, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

एम.आर.ए.डी.ए.वी. सोलन में 101 कुण्डीय हवन

आर्य युवा समाज के तत्त्वाधान में हुआ भव्य आयोजन

एम.आर.ए.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सोलन में डी.ए.वी. के प्रथम प्रधानाचार्य महात्मा हंसराज जी का बलिदान दिवस अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर आर्य युवा समाज के तत्वावधान में स्कूल की प्रधानाचार्या श्रीमती अनुपमा शर्मा के मार्गदर्शन में विद्यालय की खुशहाली, पर्यावरण संरक्षण तथा विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षाओं के लिए शुभेच्छा प्रदान करते हुए 101 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन बड़े हर्षोल्लास के साथ किया गया।

इस वैदिक यज्ञ का शुभारम्भ प्रातः गायत्री वन्दना के साथ किया गया। उसके बाद ओशीन शर्मा तथ श्रुति बक्शी द्वारा मधुर भजन *'ओ३म् है जीवन हमारा ओ३म् प्राणाधार है'* प्रस्तुत किया गया। विद्यालय के सभी विद्यार्थियों सहित अध्यापक वर्ग व गैर–अध्यापक वर्ग के सभी सदस्यों ने इस वैदिक यज्ञ में उत्साहपूर्वक भाग लेते हुए वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ श्रद्धापूर्वक आहुतियाँ डाली। इस दौरान सम्पूर्ण विद्यालय का वातावरण यज्ञमय हो गया। इस 101 कुण्डीय हवन को विद्यालय के आर्य युवा समाज के विद्यार्थियों ने बड़ी ही कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया। इसके बाद बच्चों ने ईश्वर–भक्ति व स्वामी दयानन्द तथा महात्मा हंसराज जी के जीवन से संबंधित मधुर गीत प्रस्तुत किए।

यज्ञ के उपरान्त प्रधानाचार्या श्रीमती अनुपमा शर्मा ने यज्ञ की महिमा का गुण–गान करते हुए बताया कि, "देवयज्ञ पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है और यह वातावरण के साथ–साथ हमारे विचारों को भी परिमार्जित करता है।" उन्होंने, यह भी बताया कि, "देव यज्ञ से हमें दिव्य गुणों को अपनाने की प्रेरणा मिलती है।" देवयज्ञ चमत्कारी, रोगनाशक, बलबर्धक और अनेक वैदिक मंत्रों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जीवन की सब समस्याओं का नाश करने वाली और सुखों का अमृत पिलाने वाली यह हवन क्रिया हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। यह और अशुभ वैसे ही हैं जैसे प्रकाश और अंधेरा। दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

अन्त में प्रधानाचार्या ने वार्षिक परीक्षाओं के लिए विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ देते हुए से छल, कपट, ईर्ष्या–द्वेष, झूठ, अहंकार, क्रोध आदि दुर्गुणों का त्याग करते हुए सद्गुणों को धारण करने के लिए प्रेरित किया।

आर्य समाज विक्रमपुरा द्वारा वैदिक-प्रतियोगिता का आयोजन

आर्य समाज विक्रमपुरा जालंधर के प्रांगण में अर्न्तविद्यालय स्तरीय वैदिक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन आर्य समाज की प्रधाना डॉ. श्रीमती रेखा कालिया भारद्वाज, प्राचार्या, हंसराज महिला महाविद्यालय के नेतृत्व में बड़ी धूमधाम से किया गया। प्रतियोगिता में 15 स्कूलों के 40 प्रतियोगियों ने भाग लिया। प्रतियोगियों ने स्वामी दयानंद सरस्वती, आर्य समाज, वेदों के महत्व इत्यादि विषयों पर अपने विचारों का प्रकटीकरण किया।

समारोह का शुभारंभ परमपिता के चरणों में भजन प्रस्तुति द्वारा हुआ। प्रिं. इन्द्रजीत तलवाड़, मंत्री आर्य समाज ने आर्य समाज का परिचय प्रदान किया। प्रिंसीपल डॉ. रेखा कालिया भारद्वाज ने आए हुए अतिथियों का अभिनंदन किया। उन्होंने छात्रों को युगप्रवर्तक, महान् द्रष्टा व स्रष्टा स्वामी दयानंद के दिखाए मार्ग पर चलने का संदेश देते हुए सही अर्थों में आर्य बनने की बात की। उन्होंने बताया 'आर्य' अर्थात् 'श्रेष्ठ' वह है , जो श्रेष्ठ कार्य करता है।

प्रतियोगिता में आठवींसे दसवीं कक्षा के प्रतिभागियों में पुलिस डी.ए.वी. स्कूल के आवान ने प्रथम स्थान, दयानंद माडल स्कूल दयानंद नगर की स्वाति ने द्वितीय स्थान तथा पुलिस डी.ए.वी. स्कूल की मुस्कान ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इसी तरह ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा के प्रतिभागियों में पुलिस डी.ए.वी. स्कूल की राजबीर कौर ने प्रथम स्थान, दयानंद माडल स्कूल माडल टाऊन की आभा ने द्वितीय स्थान और हंसराज महिला महाविद्यालय की सुरभि ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। प्रधाना डॉ. रेखा कालिया भारद्वाज ने विजेताओं को पुरस्कृत किया। प्रिं. इन्द्रजीत तलवाड़, डॉ. रमा चौधरी व श्रीमती रेणु ने निर्णायकगण की भूमिका अदा की। इस अवसर पर सहमंत्री आर्य समाज विक्रमपुरा प्रि. रविन्द्र शर्मा, प्रिं. राजेश ज्योति, प्रिं. अनीता नंदा प्रि. रोशन लाल अरोड़ा, प्रि. रवि शर्मा, श्रीमती सरिता गुप्ता, प्रि. नरेन्द्र पाल शर्मा, प्रि. राज कुमार सहगल, प्रो. रितु तलवाड़ और गणमान्य आर्य समाजी उपस्थित थे। मंच संचालन डॉ. राजीव कुमार द्वारा किया गया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पश्चिमी पटेल नगर महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस की स्मृति में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु विशाल हवन का आयोजन किया। गया। प्रधानाचार्या रश्मि गुप्ता जी मुख्य यजमान थीं। पाठशाला के प्रांगण में कक्षा तीन से सातवीं तक के सब बच्चों तथा पाठशाला की अध्यापिकाओं ने बच्चों को दयानन्द जी के जीवन की मुख्य बातें बताईं तथा बताया कि वह किस प्रकार छोटी सी आयु में घर त्याग कर सत्य की खोज में तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की खोज में चले गये। उन्होंने अपना पूरा जीवन वेदों के प्रचार प्रसार में अर्पण कर दिया! पूरे विश्व को आर्य बनाने का दृढ निश्चय करके आजीवन तन–मन से आर्य समाज की सेवा में लगे रहे! आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी को हमारा हृदय की गहराई से शत–शत–नमन!

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 06 दिसम्बर, 2015 से 12 दिसम्बर, 2015

आओ, हे गोपाल!

●डॉ. रामनाथ वेदालंकार

यन्नियानं न्ययनं, संज्ञानं यत् परायणम्।
आवर्तनं निवर्तनं, यो गोपा अपि तं हुवे।।

ऋग् १०.१९.४

ऋषिः **मथितः यामायानः वारुणिः भृगुः, भार्गवः च्यवनो वा।** देवता **आपः गावो वा।** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● **(यत्)** जो, **(नियानं)** नियन्त्रण में प्रस्थान करना [और], **(न्ययनं)** नियन्त्रण में गति करना [है], **(यत्)** जो, **(संज्ञानं)** परस्पर ऐकमत्य रखना, **(परायणम्)** दूर–दूर तक जाना, **(आवर्तनं)** चारों ओर चक्कर लगाना और, **(निवर्तनं)** वापिस लौटाना [है, उसे तथा], **(यः)** जो, **(गोपाः)** गोपाल [है], **(अपि तं)** उसे भी, **(हुवे)** [मैं] पुकारता हूँ।

● मैं 'गोपाल' को पुकारता हूँ। वह अपने संरक्षण में गौओं को वन में चराने ले जाता है। उन्हें घुमाता–फिराता है, आपस में लड़ने नहीं देता, प्रत्युत उनमें संज्ञान स्थापित रखता है, दूर–दूर तक दौड़ें लगवाता है, घेरे में बैठाता है, चारों ओर चक्कर लगवाता है, फिर अपने संरक्षण में ही उन्हें लौटा लाता है। यदि 'गोपाल' उनके साथ न हो, तो कोई गाय खड्ड में गिरकर लंगड़ी हो जाए, कोई सिंह या व्याघ्र की शिकार हो जाए, कोई पहाड़ से गिरकर अपनी हड्डी–पसली तुड़ा बैठे, कोई आपस में ही लड़कर सींगों से लहूलुहान हो जाए।

भाइयो! बाह्य गौओं के समान हमारे अपने शरीर के अन्दर भी गौएँ रहती हैं, वे हैं, मन–सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। वे अपने–अपने ग्राह्य विषयों के वन में चरने जाती हैं। चक्षु, जिह्वा, नासिका, श्रोत्र, त्वचा और मन–रूपिणी गौओं की भक्ष्य घास क्रमशः रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और संकल्प्य विषय है। ज्ञानेन्द्रिय–रूप गौओं को परमात्मा ने हमें सत्य की ज्ञान–प्राप्ति में सहायक होने के लिए दिया है, न कि विषय–भोगों में फँसने के लिए। इन्हें श्रेष्ठ घास का ही स्वाद लेना है, विषैली घास का नहीं। 'गोपा' या गोपाल इन गौओं का संरक्षक जीवात्मा है। इन पर उस 'गोपाल' आत्मा का नियन्त्रण आवश्यक है। जब ये अपने–अपने विषयों को ग्रहण करने के लिए प्रस्थान करती हैं, वृत्तियों को बाहर भेजती हैं, तबसे लेकर वापिस लौटने तक इन पर उस गोपाल का संरक्षण रहना चाहिए। अतः मैं अपने 'गोपाल' को पुकारता हूँ। हे मेरे गोपाल आत्मन्! तुम इन इन्द्रिय–रूपिणी गौओं को अपने नियन्त्रण में ही विषयों के वन में प्रस्थान कराओ, अपने नियन्त्रण में ही इन्हें गति कराओ, अपने नियन्त्रण में इनमें परस्पर ऐकमत्य उत्पन्न करो, अपने नियन्त्रण में ही इन्हें भद्र विषयों को ग्रहण करने के लिए दूर–दूर तक ले जाओ, अपने नियन्त्रण में ही इन्हें जगत् की परिक्रमा कराओ, और अपने नियन्त्रण में ही इन्हें सकुशल वापिस लौटाओ। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारी गोशाला की गौएँ स्वच्छ, पवित्र, परिपुष्ट बनी रहेंगी और उनका पवित्र पोषक दूध तुम्हें मिलता रहेगा।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी कह रहे थे कि वासना के बिना कर्म का अर्थ है निष्काम कर्म। ऐसे कर्म से जीवन भी चलता है। जीवन दो प्रकार का है – एक Objective अर्थात् संसार के लिए, दूसरा Subjective अर्थात् आत्मा के लिए। दूसरे प्रकार का जीवन वह है जिसमें मनुष्य कर्म करता है तो कर्तव्य की भावना से। योग का अर्थ मिलाप है। भक्त इसी मिलाप की चाहना करता है।

मस्तिष्क में तर्क रहता है, ज्ञान रहता है। हृदय में श्रद्धा का और प्यार का निवास रहता है। वह महाशक्ति इस ज्ञान और प्यार को मिलाकर प्राणरूप होकर सारे संसार को चला रही है। इसका पता तब चलता है जब मस्तिष्क में बैठा हुआ ज्ञान और हृदय में बैठा हुआ प्यार दोनों एक हो जाते हैं।

अब आगे....

यह है हृदय और मस्तिष्क सी देने का अर्थ। हृदय में श्रद्धा उत्पन्न कर, मस्तिष्क में ज्ञान, दोनों को सी दे। फिर जो आवाज़ सुनाई देगी उसके अनुसार चल, ईश्वर मिलेगा अवश्य। प्रेम बढ़ता है तो ज्ञान का रूप धारण कर लेता है। ज्ञान में जब सच्चाई आती है तो प्यार जाग उठता है। 'प्रेम' ज्ञान का रस, ज्ञान प्रेम की ज्योति। गाढ़ प्रेम से ज्ञान उत्पन्न होता है और अगाध 'ज्ञान' से प्रेम जागता है। दोनों जब मिलते हैं तब कल्याण जाग उठता है। अंग्रेजी भाषा के एक कवि ने इस बात को सुन्दर शब्दों में कहा है–

Wisdom is the lamp of love,
And love is the oil of the lamp.

ज्ञान प्यार का दीपक है, परन्तु इस दीपक में जो तेल जलता है वह प्यार है। प्रेम के बिना ज्ञान कुछ नहीं, ज्ञान के बिना प्रेम कुछ नहीं। दादू जी ने कोरे ज्ञान की बात कहते हुए गाया–

मसी कागद के आसरे, क्यों छटे संसार।
प्रभु बिना छूटे नहीं, दादू भरम विकार।।

कोरे ज्ञान से, बड़ी–बड़ी बात कहने से और बड़े–बड़े लेखन से तो यह जन्म–मरण का बन्धन समाप्त नहीं होता। वह तो प्यार से समाप्त होता है और यह प्यार बहुत सरल नहीं मेरे भाई!

प्रेम पियाला जो पिये,
सीस दक्षिणा देय।
लोभी सीस न दे सके,
नाम प्रेम का लेय।।

इस बात को गुरु गोविन्द जी ने कहा था कि–

जो तोहे प्रेम करन का चाव।
सिर धर तली, गली मोरी आव।।

सिर देना पड़ता है; इसमें अपने–आप को मिटा देना पड़ता है–

कबीरा यह घर प्रेम का,
खाला का घर नाहि।
सीस उतारे कर धरे,
सो पैठे घरु माहिं।।

यह तो सिर देने का सौदा है भाई–

प्रेम न खेती ऊपजे,
प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे,
सिर दे सो ले जाय।।

प्रेमी है भी वही जो मरने से न डरे–

जब लग मरने से डरे,
तब लग प्रेमी नाहिं।
बड़ा दूर है प्रेम घर,
समझ लेव मन माहिं।।

परन्तु देखो, यह सौदा महँगा नहीं। यह सिर एक–न–एक दिन जायेगा अवश्य। इसे रहना है नहीं। प्रभु के प्यार में दे दो तो वैसे ही ज्योति जाग उठेगी जैसे दीपक की बत्ती का सिर काटने से उसकी लौ तेज़ हो उठती है, नहीं तो सिर भी जायेगा और अँधेरा भी रहेगा–

सिर राखे सिर जात है,
सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की,
कटे उजियारा होय।।

विचित्र संसार है प्रेम का। यहाँ मृत्यु में जीवन मिलता है, विनाश में निर्माण जागता है। अपना आपा मिटा दो। अहंकार को समाप्त कर दो। अपने–आप को प्रभु के अर्पण कर दो, फिर प्रभु भी मिलते हैं। यह मरा हुआ अहंकार जन्म–मरण के बन्धन को खा जाता है। यह हथेली पर सिर को रखकर आगे बढ़ता हुआ प्यार परमानन्द के उस जगत् को जगा देता है जिससे अधिक सुन्दर और कोई वस्तु नहीं–

घर जालूँ घर ऊबरे।

घर को जला दूँ तो घर बच जायेगा–

घर राखूँ घर जाय।

और इस घर को बचाने का प्रयत्न करूँ वह जलेगा अवश्य, एक दिन चिता में धधक उठेगा–

एक अचम्भा देखिया,
जरा काल को खाय।।

यह है आश्चर्य। प्रेम में अपना आपा मिटा दो तो यह मरा हुआ अपनापन जन्म–मरण के बन्धन को समाप्त कर देता है, काल का

महाकाल बनकर उसको खा जाता है–

दिया अपनी खुदी को जो हमने मिटा,
वो जो पर्दा–सा बीच में था न रहा।
रहा पर्दा में अब ना वो पर्दानशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।।

कई लोग आकर कहते हैं कि "प्रभु–दर्शन करा दो!" मैं कहता हूँ, "दर्शन हो सकता है परन्तु मूल्य दोगे?" तो वे आश्चर्य से कहते हैं, "प्रभु–दर्शन का भी मूल्य लगेगा क्या? मूल्य होता है क्या?" हाँ भाई! प्रभु–दर्शन का भी मूल्य देना पड़ता है। बहुत मूल्यवान् वस्तु है यह। सिर देने पर यह मिल जाये तो समझना कि बहुत सस्ती मिल गई।

परन्तु आज सिर देने की बात सुनता कौन है? आज तो लोग चाहते है कि मूल्य दिये बिना सब–कुछ हो जाये। महर्षि दयानन्द ने ऐसे लोगों को अपने ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में बहुत सुन्दर उत्तर दिया है–

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां आत्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वरो यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।। यजु. 28 । 26।।

इस मन्त्र में व्याख्या करते हुए महाराज ने कहा, "उस ईश्वर के अर्थ सब–कुछ अर्पण कर देना चाहिए। सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर–सेवा और उसकी आज्ञापालन में समर्पित करें, अर्थात् अपना प्राण भी ईश्वर के अर्पण करें। देखना, सुनना, वाणी, मन और विज्ञान, चारों वेद पढ़कर जो पुरुषार्थ किया है, जो प्रकाश, जो सुख, जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान है, यह सब परमात्मा की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर देना चाहिए। इस प्रकार जो मनुष्य अपनी सब वस्तुएँ परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है उसके लिए परमात्मा सब प्रकार के सुख देता है। अपना सब–कुछ उसी प्रभु के अर्पण कर दो।"

महर्षि ने कहा– जब तक पूरी तरह से आत्म–समर्पण नहीं करोगे तब तक प्रभु–दर्शन की आशा न करो। प्रेमी बनना चाहता है भाई, तो कुछ भी मत छिपा! सब–कुछ प्रीतम को दे दे। यह सब–कुछ तेरा है नहीं, यह तो उसी का है, उससे छिपाकर न रख–

तू छिपा छिपा के न रख इसे,
तेरा आइना है वो आइना।
कि शिकिस्त: हो तो अज़ीज़तर है
निगाहे–आइनासाज में।।

आगे बढ़ो आत्म–समर्पण करने के लिए–

सारी दुनिया से हाथ धोकर देखो।
जो कुछ भी रहा सहा है खोकर देखो।।
क्या अर्ज करूँ कि इसमें क्या लज्ज़त है।
इक मर्तबा किसी के होकर देखो।।

और सचमुच अपना है भी क्या, सब–कुछ उसी का तो है। मीरा के शब्दों में–

तात मात भ्रात बन्धु अपना नहीं कोई।
छोड़ दी है लोक–लाज होनी हो सो होई।।

तब चिन्ता किस बात की? भय किसका? वियोग की धरती पर आँसुओं के जल से सींच–सींचकर प्यार की बेल भक्त ने बो दी है। वह प्यार ही उसका सब–कुछ है–

अँसुअन जल सींच–सींच प्रेम–बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई अमृत–फल होई।।

फैल गई यह बेल, अब भक्त के लिए चैन कहाँ? शान्ति कहाँ? धैर्य से बैठ जाना कहाँ?

हे री मेरे पार निकस गया,
साजन मार्या तीर।
बिरहा ज्वाल लगी उर अन्तर,
प्राण धरत नहीं धीर।।

तीर लग गया तब धैर्य कहाँ रहेगा? मूलशंकर को लगा यह तीर। शिवपूजा की रात को वे रात्रि–भर जागते रहे, आँखें खोलें, ताकि भगवान् शंकर के दर्शन हो जायें। यह दर्शन नहीं हुआ तो अशान्ति और भी बढ़ गई। पिता ने सोचा इसकी बेचैनी की चिकित्सा विवाह है। विवाह हो जाये तो इसका मन शान्त हो जायेगा। परन्तु मूलशंकर तो अपनी बेचैनी के कारण को जानते थे। उन्होंने देखा कि मिठाइयाँ नहीं बन रहीं, कपड़े नहीं बन रहे, बाज नहीं बज रहे अपितु उनके लिए जंजीरें तैयार हो रही हैं। मन–ही–मन में उन्होंने कहा, 'ये जंजीरें नहीं पहनूँगा। जिसे खोजने का निर्णय किया है उसे खोजे बिना शान्ति से बैठूँगा नहीं।' और बजते रहे बाजे, सिलते रहे कपड़े, बनती रही मिठाइयाँ, वे सबको छोड़कर चले गये। कहाँ–कहाँ पहुँचे! एक धुन को लेकर, यही एक गीत को अपनाते हुए–

जिसने बनाई बाँसुरी,
गीत उसी के गाये जा।
साँस जहाँ तक आए–जाए,
एक ही धुन बजाये जा।।

तब तक उन्होंने चैन नहीं लिया, जब तक दर्शन नहीं हो गये, हृदय की ग्रन्थियाँ खुल नहीं गईं–

(भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।)

जब तक यह अवस्था उत्पन्न नहीं हो गई। यह है प्यार की महिमा! प्यार की आग को उत्पन्न करो, प्रभु के दर्शन होंगे अवश्य। अपनापन मिटा दो, अहंकार को समाप्त कर दो तो वह मिलेगा अवश्य। उसके मिल जाने के पश्चात् किसी से मिलने की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु ये सिर देने की बातें, वह अपने–आपको न्यौछावर कर देने की भावना, यह प्यार में पागल हो जाने की अवस्था, सब सरल तो नहीं। इसका आधार है आत्म–समर्पण, अपने–आपको भूलकर अपने–आपको प्रीतम के चरणों में अर्पित कर देना। परन्तु आज लोग प्यार पीछे करते हैं, यह प्रश्न पहले पूछते हैं कि "मुझे क्या मिलेगा?" परन्तु प्यार में व्यापार कभी नहीं होता। सफलता चाहते हो तो ऐसा प्यार करो जिसमें स्वार्थ नहीं, अपनापन नहीं। ऐसा प्यार भगवान् के साथ ही नहीं, भगवान् के बनाये हुए प्राणियों के साथ भी करो। वेद भगवान् ने ईश्वर को विश्वरूप कहा है। यजुर्वेद के 16। 25 मन्त्र में भक्त हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर कहता है–

नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।।

नमस्कार है उस अनन्त रूप को, उस विश्वरूप को। यह सारा उसी का तो है। इसे भी स्वार्थ–भावना को छोड़कर प्यार करो। ऐसा करने से वह विश्वप्रेम उत्पन्न होगा जो वर्तमान संसार की प्रत्येक समस्या की चिकित्सा है। इसी विश्वप्रेम के कारण महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम बनाते समय लिखा है–

"संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

इस नियम को देखिये। इसमें कहीं भी किसी सम्प्रदाय का, किसी देश का, किसी जाति का वर्णन नहीं। इसमें यह नहीं कहा कि केवल हिन्दुओं की उन्नति करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। यह भी नहीं कहा कि किसी विशेष भाषा की उन्नति के लिए अथवा आर्यसमाज को पंजाब, बंगाल, बिहार या उत्तरप्रदेश की उन्नति करके चुप हो जाना चाहिए। अपितु स्पष्ट शब्दों में कहा कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।' शेष सभी उद्देश्य छोटे हैं।

शेष अगले अंक में....

परमात्मा ने प्राणियों को दो प्रकार के अहिंसक और हिंसक क्यों बनाया?

● हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

शास्त्रकारों ने तीन प्रकार की योनियों को माना– 1– **भोग योनि,** जैसे पशु पक्षी आदि। 2– **उभय योनि–** अर्थात् भोगयोनि और कर्मयोनि का मिश्रण जैसे– मनुष्य। और 3– **कर्मयोनि–** जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ सुधारक महापुरुष होते हैं जैसे– ऋषि दयानन्द थे।

परमात्मा ने केवल भोग योनियों के बन्दीगृह जैसा आकार और प्रकार ही बनाया है, वह इसलिये कि जो भी मानव स्वाभाविक ज्ञान के अलावा नैमित्तिक ज्ञान विद्या प्राप्त करने के बाद भी मानवता सभ्यता के विरुद्ध आर्थिक, शारीरिक और मानसिक आदि अनुचित कर्म करता रहता है उसके आत्मा पर उसी प्रकार के संस्कार बनते रहने से जब वह शरीर लाभ करेगा तब उसे उसी प्रकार की बनी हुई संस्कार जैसी योनियों (पशु पक्षी आदि) में जन्म लेना पड़ेगा।

जब पशु पक्षी आदि में जन्म हो जाता है तब उन्हें वही योनि अच्छी लगती है। परमात्मा ने ऐसी माया उन सभी में उत्पन्न कर दी है कि यदि उन्हें कोई मारने जाता है तो वे अपनी रक्षा के लिये छिप जाते हैं। अहिंसक प्राणी हिंसकों के शिकार होते रहते हैं।

मनुष्यों में भी आतंकवादी हिंसकों से लोग बचे रहते हैं। मनुष्य भी क्रूर–हिंसक और अत्याचारी होते हैं। आज मनुष्य तो इतना हिंसक हो गया है कि वह जानवर से भी बढ़ गया है। काम, क्रोध और लोभवश, बड़े–बड़े पाप करते रहते हैं जैसे बलात्कार, अपहरण, नारी पर अत्याचार, भ्रूण हत्या, बच्चों को कष्ट देना यहाँ तक कि जला देना। ऐसे–ऐसे स्वभाव वालों के लिये ही ईश्वरीय नियम के भोग योनियाँ बनी हुई है।

जो जैसा रहता है वह उसी के यहाँ जाना पसन्द करता है। इसी प्रकार जैसा जिसका सुकर्म–कुकर्म का आत्मा के सूक्ष्म शरीर पर संस्कार पड़ा रहता है वह उसी प्रकार के मानव अथवा पशु–पक्षी आदि में जन्म लेता है।

सृष्टि के आदि में जितने प्राणी अमैथुनी तरीके से उत्पन्न हुए और उनके इससे पहले जन्म में (उनके द्वारा) जिस प्रकार के कर्म हुए थे उनके आत्मा के ऊपर उसी प्रकार के संस्कार पड़े थे और जैसे संस्कार पड़े थे, वे उन्हीं संस्कारों के अनुसार उन्हें शरीर (हिंसक और अहिंसक रूप में) धारण करने पड़े थे।

प्रश्न– अमौथुनी तरीके से जितने प्राणी उत्पन्न हुए वे सब केवल एक तरीके से अथवा किसी एक सूक्ष्म प्राणी 'अमीवा' से विकसित होते होते विभिन्न प्रकार के जलचर रेंगने वाले और पशु–पक्षी आदि उत्पन्न हो गये।

उत्तर– डार्विन के विकासवाद को

शेष पृष्ठ 04 पर ☞

☞ पृष्ठ 03 का शेष

परमात्मा ने प्राणियों को दो...

आज के विज्ञान ने नकार दिया है।

सृष्टि के आदि में कोई भी भोग योनि अपने आप उत्पन्न नहीं हुई और न किसी एक सूक्ष्म प्राणी से विकसित होकर सारे प्राणियों की उत्पत्ति हुई थी। (छिपकली, कभी कुम्भीर नहीं बना, सूअर कभी हाथी नहीं बना, इसी प्रकार बन्दर की कोई भी प्रजाति, मनुष्य नहीं बना। यदि बना होता तो आज भी बनता। जैसे तितिलियाँ आज भी सूँढ़ी कीट से उत्पन्न हुआ करती हैं।) उन योनियों की जो ईश्वरीय नियम द्वारा जैसी सांचा बनी थी, उन जैसे ही पशु–पक्षी आदि बनने के पूर्व, मनुष्यों के कई जन्मों के कर्म ही ऐसे हुये थे जिन्हें संस्कार के गुणानुसार आत्माओं को उन विभिन्न योनियों में जाकर उन जैसे शरीरों को धारण करना पड़ा। 'अमैथुनी सृष्टि सब प्रकार की होती है:–

अमैथुनी सृष्टि में केवल मनुष्य ही नहीं उत्पन्न होते, किन्तु पशु पक्षी इत्यादि सभी उत्पन्न होते हैं। ये भिन्न–भिन्न योनियाँ क्यों उत्पन्न होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर वैशेषिककार ने उनके पिछली सृष्टि में किये कर्मों की भिन्नता दिया है (**धर्म विशेषाच्च**। (वैशेषिक–4,2,8)। महाप्रलय होने पर वैशेषिककार के मत में किसी दिशा अथवा स्थान में, कोई प्राणी किसी योनि में भी बाकी नहीं रहता। (**अनियतादि देशपूर्वकत्वात्**। (वैशेषिक, 4,2,9,10)

अमैथुनी तरीके से उत्पन्न होने वाले को "अयोनिज" कहते है जो माता पिता के संयोग से उत्पन्न नहीं होते। समस्त प्राणी जो जगत् में उत्पन्न होते है, उनकी उत्पत्ति चार प्रकार से होती है। 1– जरायुज– जिनके शरीर जरायु (झिल्ली) से लिपटे रहते हैं और जरायु को फाड़कर, उत्पन्न हुआ करते हैं, जैसे मनुष्य, पशु आदि। 2– **अंडज**– जो अंडों से उत्पन्न होते है– जैसे पंक्षी, सांप, मछली आदि। 3– **स्वेदन**– जो पसीने से और सोल आदि से उत्पन्न होते हैं। 4– उदिज जो भूमि से उत्पन्न हुआ करते हैं, जैसे आत्मारहित वृक्ष–वनस्पतियाँ और दूसरा मानसून के समय जो भूमि से परिन्दे निकलकर उड़ने लगते हैं, इनकी भी उत्पत्ति अमैथुनी होती है।

पुरुष की उत्पत्ति मैथुनी सृष्टि हो या अमैथुनी, दोनों में प्राणी रज और वीर्य के मेल से ही उत्पन्न हुआ करता है। प्राणीशास्त्र के विद्वान् बतलाते हैं कि अबभी ऐसे जन्तु पाये जाते हैं जिनके रज और वीर्य माता के पेट से बाहर ही मिलते हैं और उन्हीं से बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं। **प्रश्न**– सृष्टि के आदि में मानव की उत्पत्ति कैसे हुई?

उत्तर– पंचतत्वों की उत्पत्ति के पश्चात, वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई, उसके पश्चात जलचर और छोटे–छोटे प्राणी, फिर पशु–पक्षियों की जब उत्पत्ति हो गई, तब अंत में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव योनि में युवा और युवतियों की उत्पत्ति हुई। प्रश्न होता है कि उस समय बिना माता–पिता के अमैथुनी तरीके से मानव–मानवी की उत्पत्ति कैसे हुई? तो भूमि के गुफाओं में जहाँ नमी थी, पांच सूक्ष्म भूतों, सूर्य के प्रकाश तथा अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों के योग से हजारों वर्षों में ईश्वरीय नियम द्वारा मानव उत्पादक 'रजवीर्य' जैसे उपादान बनने लगे और जब आत्माओं के संयोग से 'रज वीर्य' का मिलन हो गया, तब उनसे सहस्रों भ्रूण उत्पन्न हो गये और उस काल में भूमिमाता की कुक्षी से रस प्राप्त कर (जहाँ वृक्ष–वनस्पतियाँ भी थीं) बढ़ने लगे। फिर उन झिल्लियों से निकालकर सब पशु आकार के लेटे हुए अवस्था में सरकने लगे। और भूमि पर पड़े हुए फलों के रस प्राप्त कर हाथ पैरों से चौपाया चलते रहे। उसके पश्चात् धीरे–धीरे दो पैर पर खड़े होकर चलने लगे। इस प्रकार उन सबसे ऐसा परिवर्तन होने लगा कि उनके शरीर के बाल सब झर गये, और क्रमशः परिवर्तन होकर युवा और युवती के रूप में परिणित हो गये। यह सब तिब्बत के आस–पास में इस प्रकार के मानव बनने वाले विशेष प्रकार के प्राणी एक ही बार उत्पन्न हुए, जो क्रमशः परिवर्तन होकर 'युवा और युवली हजारों की संख्या में प्रकट हो गये। उनमें भी अन्य प्राणियों जैसा पहले स्वाभाविक (आहार, निद्रा भय, मैथुन, हिंसा–अहिंसा, और आत्म संरक्षण आदि का) ज्ञान ही था, पर मानव होने से उन सबकी बुद्धि अन्य प्राणियों से थोड़ी अधिक थी। उस समय उन सबकी कोई भाषा नहीं थी। कुछ जंगलों के गुफाओं में रहने लगे और मानसरोवर आदि स्थानों में चले आये। उस समय आदि पुरुष अथवा नारी वृक्षों के छाल केले आदि के पत्ते से अपने गुप्तांग को ढांके रहते थे। उस समय ईश्वर के अलावा उनका कोई माता पिता नहीं था। ईश्वर की महिमा समझ में नहीं आती, जिन्होंने बुद्धिपूर्वक पंचतत्त्व एवं सूर्य चन्द्रादि की रचना की और जिनकी प्रेरणा से पशु–पक्षियों को स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त हुआ और जिन्होंने वैज्ञानिक तरीकों से सबकी अमैथुनी सृष्टि की और जिनकी शक्तियों ने मानव को दशों इन्द्रियों से सम्पन्न किया, उसी सविता देव से नैमित्तिक ज्ञान के लिये उन आदि पुरुषों में जो पवित्रात्मा थे अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा–को ध्यानावस्था में (ऋक, यजु, साम और अथर्ववेद) वेदों के मंत्रों के साथ छन्दों के माध्यम से वैदिक भाषा का भी ज्ञान हो गया, जिन्हें ऋषि भाषा भी कहा जाता है।

उस समय उन ब्रह्मादि ऋषियों के सम्पर्क में जो आते रहे वे–वे सभ्य और ज्ञानी होते गये और जो जो नहीं आये थे, वे–वे असभ्य जंगली, शिकारी, सुनी सुनाई अवैदिक मत और मनमानी जंगली भाषा में व्यवहार करने लगे।

तात्पर्य यह कि कालान्तर में जो जो लोग वैदिक ऋषियों के सम्पर्क में रहकर वैदिक संस्कृत भाषा और धर्म के यज्ञादि कर्मों को ठीक से नहीं कर सकते थे, उन्हें विशुद्ध ऋषियों जाति में से वहिष्कृत कर दिया जाता था। परिणाम यह हुआ कि लड़ाई बखेड़ा करके, उन सबकी टोली विभिन्न द्वीप–द्वीपान्तर में जाकर बसने लगी और आबाद होने लगी। अतः उन्हीं के पूर्वजों ने आस्ट्रेलिया और मिश्र आदि देशों को बसाया था। इस प्रकार उन ऋषियों के समाज में रहकर उनके सम्पर्क से जो कुछ थोड़ा संस्कृत जानते थे, उसी के माध्यम से सब परस्पर देखा देखी कुछ अपनी बुद्धि से यूरोप आदि के लोगों ने भी अपनी–अपनी भाषा बनाना आरम्भ कर दिया।

आदि काल में इन्हीं आर्य (ऋषियों) और अनार्यों में लड़ाई एवं अंशान्ति के कारण ऋषि और आर्य लोग भी इसी भूखण्ड में जाकर बस गये। इसीलिये इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ था। किन्तु यह ऋषियों की पुण्य भूमि होने से महाभारत काल के बाद ऋषभ देव के पुत्र भरत के नाम से इसका नाम भारत पड़ा।

ऋषि और विद्वज्जनों ने विचार किया कि धर्म प्रचार के लिये आस्ट्रेलिया आदि देशों में जाना चाहिये। उदाहरण के लिये– *"ऋषि पुलस्त धर्म प्रचार के लिये आस्ट्रेलिया गये थे। पर वहाँ के राजा तृणबिन्दु की पुत्री से उनका विवाह हो गया। उसी से विश्रश्रवा पैदा हुआ, जो प्रसिद्ध रावण का पिता था। रावण अपने पिता की आज्ञा न मानकर मनमानी अत्याचार करने लगा, रावण संस्कृत का बहुत बड़ा विद्वान था, किन्तु आर्यों से द्वेष के कारण (सीता हरण के अलावा) उन्होंने वेदों का पूरा अनर्थ कर डाला, उसके अत्याचार से ऋषियों को बहुत कष्ट सहना पड़ता था।* इसी मध्य राजा श्री रामचन्द्र ने उस अत्याचारी का वध कर डाला।'

द्वापर युग में अन्त में महाभारत युद्ध के पश्चात् धर्म, भाषा, भाव और ज्ञान का प्रचार रुक गया, क्योंकि वैदिक ऋषि आर्य विद्वान नहीं रहे। उस समय अल्पज्ञ ब्राह्मण ही थे, जिन्होंने वैदिक धर्म के स्थान पर क्रमशः 18 पुराण ऋषियों के नाम से रच डाले, और उन्हें ही सनातन धर्म कहने लगे। तीन हजार वर्ष पूर्व कतिपय विदेशी भी अज्ञ थे, यूरोप के लोग भी पहले–असभ्य थे और अरब के पूर्वज कुरैशवंशी थे वे मूर्तिपूजा लड़ाई झगड़ा और मारकाट करते थे। पर जब से बौद्ध और गुप्तकाल के विद्वज्जन धर्मप्रचार के लिये विदेशों में जाने लगे तभी से विदेशी लोग भारत में आने लगे और पौराणिक मतों से अवगत होने लगे।

इसके अलावा देश विदेश के विद्यार्थी लगभग दस हजार से अधिक 'नालन्दा' तक्षशिला विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन के लिये आते थे। इससे विदेशियों को ज्ञान–विज्ञान की नई जानकारी प्राप्त होती रही। भारत में विज्ञान का बीज होते हुए यह उतना उन्नति नहीं कर सका, इसके अनेक कारण हैं। सन् 712 ई. से ही भारत युद्ध के चंगुल में फंस गया, इन ब्राह्मणों और फलित–ज्योतिषियों तथा राजाओं में अनेकता के कारण 700 वर्ष अरब के मुगलों ने राज्य किया और मंदिरों मूर्तियों को नष्ट कर अपार धनों को लूटते रहे, इसके अलावा अनेक ऋषियों के दर्शनों को जला दिया।

इसके पश्चात् अंग्रेज़ों की बारी आई, उन्होंने राजाओं में फूट पैदा की और प्राचीन आर्यों के इतिहास को असभ्य घोषित किया, जो कुछ बचा था उसे लूटा और अत्याचार करता रहे। इस प्रकार इन्होंने भी 200 वर्ष राज्य किया, इन्होंने भारत को कंगाल कर दिया। जिसके सुधरने में 40 वर्ष लग गये।

शीर्षक था हिंसक और अहिंसक का, तो जैसे प्राणियों में हिंसक और अहिंसक होते हैं वैसे ही मनुष्यों के इतिहास में भी आदिकाल से एक अहिंसक और दूसरा हिंसक चला आ रहा है। मानव में जो हिंसक होते हैं, वे मांसाहारी ही नहीं होते, दूसरे देश पर कब्जा करना, ईर्ष्या करना, उसे लूटना, मार देना, सताना, **बलात्कार, अपहरण करना, भ्रूण हत्या, क्रोध करना, आतंकवादी होना आदि तब हिंसा है। प्रश्न– हिंसक योनियाँ, अहिंसकों से अधिक क्यों है? उत्तर–** इसलिये कि प्राणी–उत्पत्ति काल में हिंसक प्राणी बहुत कम थे और अहिंसक अधिक थे। किन्तु जैसे जैसे मनुष्य हिंसक और अत्याचारी होता गया वैसे वैसे ईश्वरीय नियम से नये नये सांचे का आविष्कार होता गया, जिसमें ढल–ढल कर हिंसक योनियों की वृद्धि होती गई और वे अहिंसक पशु–पक्षियों का शिकार करने लगे। कितने दुर्लभ प्राणियों के वंश भी नष्ट हो गये।

मु.पो. मुरारई, जिला–बीरभूम
(पं. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– आप कहते हैं, कि क्रोध नहीं आना चाहिए। परशुराम, द्रोणाचार्य जैसे तपस्वी लोग क्रोधी थे फिर भी दुनिया उनकी पूजा क्यों करती है?

समाधान– हर व्यक्ति में गुण भी होते हैं, दोष भी होते हैं। परशुराम में कुछ गुण भी थे, और दोष भी थे। और द्रोणाचार्य में गुण थे और दोष भी थे। गुणों की पूजा होती है, दोषों की पूजा नहीं होती है। कोई भी व्यक्ति इसलिए परशुराम या द्रोणाचार्य की पूजा नहीं करता, कि वे महाक्रोधी थे। उनकी पूजा इसलिये होती है क्योंकि उनमें योग्यता थी। वे विद्वान थे, धनुर्धारी थे, बलवान थे और बड़े वीर थे। किसी भी व्यक्ति की, उसके दोषों के कारण पूजा नहीं होती। रावण के पास बहुत सारे गुण थे, इसलिये दक्षिण भारत के लोग रावण का सम्मान करते हैं। संस्कृत साहित्य में एक कहावत हैं– **''गुणाः पूजा स्थानम्''**। अर्थात् गुण पूजा का स्थान है, व्यक्ति नहीं। गुण जिस व्यक्ति में होते हैं, उस व्यक्ति की पूजा हो जाती है। वो पूजा वास्तव में व्यक्ति की नहीं है, गुणों की पूजा है। दोषों की कभी पूजा नहीं होती। दोषों का हमेशा अपमान ही होता है। परशुराम, द्रोणाचार्य के अंदर कुछ गुण थे, इसलिए उनकी पूजा होती हैं। जो दोष थे, उनके कारण पूजा नहीं होती है।

शंका– यदि मांसाहार का निषेध कर दिया जाये, तो मांस पर निर्भर लोगों की रोजी–रोटी का क्या प्रबंध है। वो क्या करेंगे?

समाधान– बहुत सारे लोग चोरी करते हैं, बहुत सारे लोग डकैती भी करते हैं, तो क्या आप यह कहेंगे, 'कि चोरी डकैती यदि बंद कर दी जाये, तो उनके धंधे का क्या होगा? चोरी, डकैती उनका धंधा है। उनकी रोजी–रोटी मारी जायेगी। चोरी डकैती वो बंद कैसे कर सकते हैं।' चालू रखो। चालू रखो। चलेगा क्या है? धन्धा कौन सा करना, व्यवसाय कौन सा करना। वो भी ईश्वर ने बता रखा है। अच्छा धन्धा करो, अच्छा व्यवसाय करो। लूट–मार वाला नहीं, चोरी–डकैती वाला नहीं। मांसाहार का धन्धा ही गलत है। वो धन्धा ही कानून के विरूद्ध है। वो बंद करना पड़ेगा। गेहूँ पैदा करो, अनाज पैदा करो, खेती करो, व्यापार करो, मेहनत करो, मकान बनाओ, कपड़ा बेचो, रोटी बेचो, मिठाई बेचो। दुनिया भर की चीजें हैं, एक मांसा ही है क्या खाने के लिये। चीन देश वाले अपने का बौद्ध मानते हैं। और बौद्धों का नारा क्या है– **अहिंसा परमो धर्मः**। और व्यवहार में देखो तो– **हिंसा परमोधर्मः**। चीन वालों ने एक भी प्राणी नहीं छोड़ा, सब खा जाते हैं। कछुए, केकड़े, सांप, बिच्छु सब खा जाते हैं, कुछ नहीं छोड़ा। बताईये, यह अपने आप को अहिंसावादी कहते हैं। तो क्या खाना, क्या नहीं खाना यह भी वेद में बताया है। उदाहरण के लिये– आप एक मोटरसाइकिल खरीदकर लाये उसमें कौन सा फ्यूल डालें, पेट्रोल डालें, डीजल डालें, या कैरोसीन डालें, यह कौन डिसाईड करेगा। कस्टमर करेगा या कंपनी। कंपनी डिसाईड करेगी न, जिस इंजीनियर ने इंजन किया है, वही डिसाईड करेगा, इसमें कौन सा फ्यूल डालना है। ठीक है। मान लीजिये, मोटरसाइकिल का नाम हीरो–होण्डा है। अब आपको पता लग गया इसमें कौन सा फ्यूल डलेगा। फ्रेश पेट्रोल डलेगा। न डीजल डलेगा, न कैरोसीन डलेगा। और पेट्रोल में भी ऑइल मिक्स नहीं करना। फ्रेश पेट्रोल ही टन्की में डलेगा। तो यह डिसीजन किसने लिया? उस इंजन के डिजाईन करने वाले इंजीनियर ने। उसको पता है, कि मैंने कैसा इंजन बनाया है, इसमें कौन सा फ्यूल डालना है। ठीक इसी तरह से, यह जो हमारा मनुष्य शरीर है, यह भी एक मशीन है। और इसके अंदर पाचन संस्थान भी इंजन है। तो इस पाचन संस्थान में कौन सा फ्यूल = (भोजन) डालना है, यह कौन डिसाईड करेगा। हम करेंगे या इसका इंजीनियर।

इसका इंजीनियर करेगा, जिसने ये बॉडी (शरीर) बनाई है। यह शरीर किसने बनाया, ईश्वर ने। तो यह ईश्वर डिसाइड करेगा, हमको क्या खाना है, और क्या नहीं खाना। इस इंजन में कौन सा फ्यूल डालना। तो वेद में ईश्वर ने शाकाहारी भोजन खाने को बताया है। जो मैंने पहले आपको मंत्र भी सुना दिये, बहुत से प्रमाण सुना दिये, यजुर्वेद, अथर्ववेद के। तो जब ईश्वर कहता है– शाकाहारी भोजन के खाने के लिये यह इंजन डिसाइड किया गया है। अगर आप इसमें मांस डालोगे, तो बिल्कुल वैसी ही बात है, कि हीरो–होण्डा मोटरसाइकिल के अंदर डीजल भरते हैं। तो इंजन का सत्यानाश हो जायेगा। मांस खाना, शराब पीना और अण्डे खाना, ये सब मनुष्य शरीर में डालना। इसका अथ है, कि 'पेट्रोल' इंजन के अंदर 'डीजल' फ्यूल डालना। वो इसका विनाश करेगा। इसलिये मनुष्य को मांस आदि नहीं खाना चाहिये।

दर्शन योग महाविद्यालय
साबर कांठा, रोजड़, गुजरात

मातृभूमि का वैदिक गीत

● डा. सुशील वर्मा

सारे विश्व को ज्ञान से प्रकाशित करने का श्रेय जिस भूमि को है वह है भारतवर्ष। परमात्मा की अनुकम्पा से सृष्टि के प्रारम्भ में हमें ऋषियों के माध्यम से वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। वेद ने स्वतः प्रमाण होते हुए मनुष्य मात्र के लिए ज्ञान की ज्योति को गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा प्रज्ज्वलित एवं प्रसारित किया। वेद ज्ञान, का भण्डार है "सर्व ज्ञानमयो हि सः" (मनु) जहाँ वेदों ने हमें जीवन पद्धति का मार्ग दर्शाया वहीं हमें ज्ञान, कर्म एवं उपासना का परिपूर्ण भण्डार प्रदत्त किया। विश्व के किसी ग्रंथ में भी ऐसी परिपूर्णता नहीं जैसी वैदिक परम्परा में है। फिर चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक, राजनैतिक अथवा कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, सभी धाराएँ उत्कृष्ट, सम्पन्न एवं समरूप में प्रवाहित होती प्रतीत होती हैं। परिवार, व्यैक्तिक, समाज, राष्ट्र एवं समष्टि के प्रति उदात्त भावनाओं का सन्देश नैसर्गिक रूप में उपस्थित होता दृष्टिगोचर होता है। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" (बा.रा.) जैसे भाव ऐसे ही तो नहीं प्रकट हो गए। यह सब हमारी वैदिक संस्कृति एवं परम्पराओं का परिणाम है। यह विश्ववारा संस्कृति आज से नहीं अपितु प्रारंभिक काल से ही हमें सुसंस्कृत करती चली आ रही है। **इड़ा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हि सीदन्त्वस्रिधः।।** ऋग् 1/13/9

स्तुति योग्य, प्रशंसनीय संस्कृति, वाणी, मातृभाषा एवं पूजा–योग्य मातृभूमि, हिंसा रहित, कभी न हानि पुहँचाने वाली सुख समृद्धि देने वाली, दिव्य ये तीनों देवियाँ घर घर को प्रकाशित करें। ऐसी रही है हमारी प्रचलित एवं पल्लवित संस्कृति जिसे वैदिक संस्कृति से सम्बोधित किया जाता रहा है। यही है विश्व के स्वीकार करने योग्य एवं सुख शान्ति व समृद्धि प्रदान करने वाली संस्कृति **"सा प्रथमा संस्कृति" विश्वास** संस्कृति राष्ट्र और जाति की आत्मा है। आत्मिक उत्थान का प्रतीक है संस्कृति। शारीरिक, आत्मिक एवं बौद्धिक विकास ही संस्कृति का उद्देश्य है। यहाँ कोई छोटा बड़ा नहीं। सभी को मिल कर चलने का, मिल कर विचार विनिमय करने का आदेश दिया जाता है।

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" (ऋग् 19/112/2)

इसी श्रृंखला में जहाँ पारिवारिक सम्बन्ध, कर्त्तव्य एवं अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाता है वहीं राजा का चयन, राजा के कर्त्तव्य, एवं प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व भी समझाया जाता है वही प्रजा को भी समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य, एवं परायणता का सन्देश व आदेश भी दिया जाता रहा है। इसी भावना से ओत–प्रोत है अथर्ववेद का भूमि सूक्त (12.1) जिसमें राष्ट्रीयता, एवं मातृभूमि के प्रति प्रेम, कृतज्ञता, निष्ठा एवं कर्त्तव्यपरायणता की शिक्षा दी गई है। इस सूक्त में 63 मन्त्र हैं जिसका पहला मन्त्र मातृभूमि की स्वाधीनता को धारण करने के लिए आठ गुण वर्णन करता है

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।। अथर्व 12/1/1

अर्थात सत्य, उद्यम, सरल निश्चल व्यवहार, वीरता नियमनिष्ठा तप द्वन्द्वों की चिन्ता किए बिना कर्त्तव्य पालन, आस्तिकता, यज्ञ–संगतिकरण अर्थात मिलकर काम करने की भावना, ये आठ गुण मातृभूमि की स्वाधीनता को धारण करते हैं अर्थात सुरक्षित रखते हैं। अतीतकाल की भविष्यत रक्षा करने वाली वह मातृभमि हमारे लिए विस्तृत क्षेत्र बनाए।

राष्ट्र भक्तों के भूत भविष्यत वर्तमान काल की नियामक देवता मातृभूमि ही रहेगी। भूतकाल में मातृभूमि की जैसी सेवा की होगी वैसी ही उनकी वर्तमान स्थिति होगी। वर्तमान में जैसे उपासना करोगे उसी के अनुसार ही भविष्य तय होगा। राष्ट्र भक्तों में एकता की आवश्यकता होती है। सभी विविधता के बावजूद आदि माता यही मातृभूमि है। मातृभूमि की उपासना में भाषा, प्रान्त, धर्म एवं जाति का भेद कहीं भी स्वीकार्य नहीं।

जनं बिभ्रती बहुधाविवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् अथर्व 12/1/45

हमारी जिस मातृभूमि के नगर देवों द्वारा बनाए गए हैं और जिसके खेतों में सब मनुष्य विविध कार्यों में कार्यरत हैं, सब पदार्थों को अपने गर्भ में धारण करने वाली मातृभूमि को परमेश्वर सब दिशाओं में हमारे लिए रमणीय बनाए।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

अस्तेय (न+स्तेय)

● भद्रसेन

अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना और किसी की कोई भी चीज उससे पूछे बिना न लेना ही अस्तेय का मूल अभिप्राय है। जैसे कि शंख और लिखित की कहानी प्रसिद्ध है, कि एक भाई ने दूसरे की अनुपस्थिति में उसके बाग से फल लिए। किसीकी स्वाभाविक इच्छा के बिना उससे कुछ लेना भी स्तेय ही है। आज कल राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक चन्दे (दान) उगाहने वालों की दृष्टि से यह बात विशेष विचारणीय है, क्योंकि इन क्षेत्रों में विशेष दबाव से दान लिया जाता है। देने वाले मन से देना नहीं चाहते, पर पहचान, मजबूरी, कार्य में रुकावट का लाभ लिया जाता है। सामाजिक दृष्टि से अपने हक, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह भी अस्तेय का उल्लंघन है, क्योंकि इस से समाज में दूसरों को उन का भाग प्राप्त नहीं होता या वे प्राप्त करने में पिछड़ जाते हैं। **स्तेय**–चोरी, **परिग्रह** –अधिक संग्रह से आपाधावी, अविश्वास, अशांति, अमर्यादा, अव्यवस्था फैलती है, जिस से दु:ख ही बढ़ता है। जब कोई दूसरों की चीजों, अधिकारों, अवसरों, श्रम से उपार्जित फल–कमाई की चोरी नहीं करता है तो सभी की वस्तुएं, सम्पत्ति, अधिकार और अवसर सुरक्षित रहते हैं।

1– अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपरस्थानम् योग.2.37– जब कोई चोरी नहीं करता है, तो स्वामी की चीज सुरक्षित रहती है।

अनादानमदत्तस्यातेय व्रत मुदीरितम्।
बाह्याः प्राणा, नृणमर्थो हरता तं हता हि ते।।

(सर्व दर्शनसंग्रह– जैनदर्शन) स्वेच्छा से न दी गई वस्तु का ग्रहण न करना अस्तेय व्रत है, क्योंकि धन, अस्तेय–चोरी न करना शब्द बहुत ही व्यापक अर्थ की ओर संकेत करता है, जैसे कि मैंने जो भी कार्य स्वीकार किया हुआ है, यदि मैं उस को पूरी ईमानदारी से नहीं करता, वह भी चोरी ही है। जैसे कि कोई कार्यालय में पूरा कार्य नहीं करता, उस में जिस किसी प्रकार से टाल–मटोल, लापरवाही करता हूं, आने वालों को बार–बार चक्कर कटाता है। अतः कहीं समय की, कहीं कार्य की, कहीं ज्ञान की और कही श्रम की चोरी की जाती है। जब कोई किसी से कार्य करा कर उस को पूरा पारिश्रमिक नहीं देता, तो यह भी एक तरह से चोरी ही है। ऐसे ही जब एक दुकानदार ग्राहक को शुद्ध वस्तु नहीं देता या कम तोलता है, अधिक मूल्य लेता है मिलावट करता है, नकली माल देता है, तो वह ग्राहक से उस –उस रूप में चोरी ही करता है। क्योंकि वह भी ग्राहक की आंख बचाकर, उसकी अज्ञानता का लाभ उठाकर, उसे धोखे में रख कर उससे ठीक व्यवहार नहीं करता है। जैसे एक चोर मालिक की नींद, असावधानी, अज्ञानता, अन्धेरे आदि का लाभ उठाकर उस का सामान धन ले लेता है। चोरी का एक क्रूर रूप डाका है,

सम्पत्ति लोगों के एक प्रकार से बाह्य प्राण हैं अर्थात् प्राणों की तरह हर एक को अपनी चीजें प्यारी होती हैं, लगती हैं। अतः उनसे उन वस्तुओं को ले लेने से उनकी हत्या ही हो जाती है।

एक डाकू जबरदस्ती देखते–देखते हथियार आदि के बल पर वस्तु छीन लेता है। किसी व्यक्ति का अपहरण या उसके साथ बलात्कार करता है, तब वस्तु का स्वामी या वह व्यक्ति बिल्कुल नहीं चाहता, कि मेरे साथ ऐसा व्यवहार हो। ऐसे ही जो किसी विभाग के अधिकारी बन कर या होने से दुकानदारों, कारखाने वालों आदि से डरा कर, छापे आदि के नाम पर पैसा लेते हैं, महीना बांघते हैं, इस प्रकार की बातें भी क्रूर चोरी के रूप में ही आती हैं। हां जो कारोबारी इन रास्तों को अपनाते हैं, वे तो स्पष्ट रूप से व्यवस्था की चोरी करते हैं।

औरों की अपेक्षा अपना मन अधिक अच्छी प्रकार से जानता है, कि मैं कहां किस–किस, प्रकार की चोरी करता हूं। जैसे कि मैं अपना स्वार्थ साधने के लिए या दूसरों को धोखे में रखने के लिए दूसरों से सचाई या बात छिपाता हूँ, बात अधूरी या बदल कर बतलाता हूँ। ये सब चोरी के ही रूप हैं, इन सब रूपों को छोड़ने का नाम ही अस्तेय है।

सम्पर्कः–09464064398

☞ *पृष्ठ 05 का शेष*

मातृभूमि का वैदिक ...

प्रजापतिः पृथिवी विश्व गर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु। अथर्व 12/1/43

प्रजा को जब विश्वास हो जाता है कि हमारे नगरों का सम्बन्ध देवों से है और उन देवों का देवत्व हमारे इन विशाल नगरों में प्रत्यक्ष देखा है तो निश्चय रूप से देश प्रति मन में एक भाव उमड़ पड़ता है, एक जागृति एक आती है, उत्कृष्टता जाग उठती है। श्री राम का सम्बन्ध अयोध्या, रामेश्वरम् से, श्री कृष्ण का गोकुल वृदांवन और द्वारिका से इन्द्र का इन्द्रप्रस्थ से, शिव का काशी से, शिवाजी का सिहंगढ़ से, महाराणा प्रताप का चितौड़गढ़ उदयपुर से, झाँसी से रानी लक्ष्मी बाई से, सुभाष चन्द्र बोस का कलकता से, भगत सिंह का पंजाब से, स्वामी दयानन्द का टंकारा व अजमेर से, विवेकानन्द का कलकत्ता से । इसी प्रकार अन्य महापुरुषों का भिन्न–भिन्न स्थानों से। तब वे स्थान गौरव का प्रतीक बन जाते हैं, आस्था निष्ठा व त्याग के केन्द्र बन जाते हैं। उस मातृभूमि का नाम ही हमारे लिए प्रेरणा स्रोत बन जाता है। हमारी तो वह राष्ट्रभूमि है जिसने सारे विश्व को चरित्र की शिक्षा दी, राष्ट्रियता की शिक्षा दी, जीवन के मूल्यों की पारस्परिक, पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय सद्भावना, सम्बन्धों व देश पर मर मिटने की परम्परा दी। सबसे प्रथम संस्कृति प्रदान करने का श्रेय भारत वर्ष को ही तो है। मनु के शब्दों में

एतत् देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन, पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

(मनु स्मृति)

मातृभूमि की कल्पना सर्वप्रथम ऋषियों की है। यह इस अथर्ववेद के भूमि सूक्त से प्रमाणित है जिसे मातृभूमि का वैदिक गीत भी कहा जाता है। इसी भूमि सूक्त में कहा गया है कि हमारी जिस मातृभूमि में हमारे प्राचीन पूर्वजो ने पराक्रम किया है, जिस में देवों ने असुरों को भगा दिया, जो गायों, घोड़ों, पक्षियों एवं अन्य प्राणियों को स्थान देती है वह मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज दे।

यस्या पूर्वे पूर्वजनां विचक्रिरे यस्या देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भग वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

जिस भूमि पर शरीर में यथार्थ कर्म करने वाले, ज्ञानवान, सात विषय प्राप्त करने वाले ऋषियों ने सत्पुरुषों के रक्षक यज्ञ एवं ब्रह्मचर्य तप के साथ वेद वाणियों को उत्तमता से पूजा है, ऐसी वह हमारी श्रेष्ठ मातृभूमि है।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सत सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह।। अथर्व 12/1/39

जिस पर भूमि शिला पत्थर और धूलि है वह यथावत धारण की गई भूमि धरी हुई है, उस सुवर्ण आदि धन छाती में रखने वाली पृथिवी से मैंने अन्न लिया है अथवा सेवन किया है।

शिला भूमिरश्मा पासुं सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्ष से पृथिव्या अकरं नमः।।
अथर्व 12/1/26

इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि मातृभूमि की कल्पना सर्वप्रथम हमारे ऋषियों मनीषियों की है और जब कृतज्ञता के भाव जाग्रत होते हैं। तब वह कह उठता है कि यह मातृभूमि जहाँ मैं पैदा हुआ हूँ, मैं इस पृथिवी का पुत्र हूँ।

माता भूमिःपुत्रोऽहं पृथिव्याः। अथर्व 12/1/12

यह स्वाभाविक है कि मनुष्य अपनी मातृभूमि में पैदा होने वाले अनाज, फल, कन्दमूल इत्यादि का सेवन करता है और पुष्ट होता है तब अपनी मातृभूमि पर प्रेम उमड़ता है। यदि माता के प्रेम की कोई उपमा देनी होती है तो वह केवल और केवल मातृप्रेम ही हो सकता है अन्य नहीं। इसीलिए हमने माता के समान उपकार करने वालों को केवल माता का ही नाम दिया क्योंकि उससे बढ़कर कोई उपमा है ही नहीं। फिर वह चाहे गऊ माता हो, गंगा मैया हो, अथवा कल्याणकारी गायत्री।

उनके उपकारों के साथ–साथ हम प्रार्थना करते हैं कि वह भूमि (मातृभूमि) हमें तेज बल एवं उत्कृष्ट राष्ट्र का गौरव प्रदान करे। "सा नो भूमिस्तिवषि बलं राष्ट्रे दधतूत्तमे।" अर्थव 12/1/8

यहाँ शब्द 'उत्तम राष्ट्र प्रयोग किया गया है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र भक्त की आकांक्षा होती है कि मेरा राष्ट्र सब राष्ट्रों में उत्तम हो।

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा"–इकबाल

इसके साथ यह भी प्रार्थना करते हैं कि दुखदायी, हिंसक, विरुद्ध चलने वाले और जो कंजूस एवं लुटेरे पुरुष हैं, हे भूमि! इन पिशाचों और सब राक्षसों, दुश्चारियों, आततायियों को हमसे अलग रख।

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चाराया किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्माद् भूमे यावय।।
अथर्व 12/1/50

अर्थात ऐसी मातृभूमि जो हमारा पालन पोषण करती है, हमें हृष्ट पुष्ट बनाती है, जिसका अन्न सेवन करके हम बड़े होते हैं, जो हमारी शत्रुओं से, असुरों से, लुटेरों से रक्षा करती है, जो हमें उत्तम राष्ट्र का नागरिक बनने का गौरव प्रदान करती है। ऐसी मातृभूमि के लिए हम सभी बलिदान होने के लिए सदा तत्पर रहें। राष्ट्र भक्त इसी भावना के ओत प्रोत होकर पुकार रहा है।

"वयं तुभ्यं बलिहतः स्याम"
उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्ये सन्तु पृथिवी प्रसूताः।
दीर्घ न आयुः प्रति बुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।। अथर्व 12/1/62

अर्थात हे पृथिवी तेरी गोदी हमारे लिए नीरोग और राजरोग अथवा क्षयरोग रहित हो। अपने आयु को दीर्घ काल तक जगाते हुए हम तेरे लिए बलिदान देने वाले बने रहें। हे मातृभूमि हम लोग तुम्हीं में से उत्पन्न हुए हैं, हम सभी नीरोग, दृढ़ाग, दीर्घायु, बुद्धिमान एवं जागृति सम्पन्न रहें। हम मातृभूमि के हित के लिए अपने तुच्छ निज स्वार्थों की बलि देने में उद्यत रहें। सब भाँति तुम्हारा हित करने में तत्पर रहें। मातृभूमि के लिए हम अपने आप को आहूत करने हेतु सदा तत्पर रहें।

'अयं ते इध्म आत्मा' इस भाव को जाग्रत कर कहें

'इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्राय इदं न मम"–वन्दे मातरम्।

मो.09217832632
गली मास्टर मूल चन्द वर्मा
फाजिलका (पंजाब)

एक या पांच

● अभिमन्यु कुमार खुलर

सामान्यत: लेख का शीर्षक पहले ही मस्तिष्क में आ जाता है क्योंकि विचार तंत्री उस ओर ही घूमी हुई होती है। उसे ही लिख देता हूँ। संशोधन की आवश्यकता कम ही पड़ी है, पर महाभारत के जिस पात्र के बारे में एक लेख **'माम विवस्त्रा कुरू मा'** लिख चुका हूँ। वह पात्र अभी चुम्बकीय शक्ति से मुझे जकड़े हुए है। उसी के विषय में पुनः एक लेख लिखते हुए, शीर्षक देने में थोड़ा रुकना चाहता हूँ।

ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन ने अभी लक्ष्यभेद नहीं किया था। स्वयंवर सभा में कृष्णा ने प्रवेश ही किया था कि उसके सौन्दर्य का मादक नशा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव के अतिरिक्त, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, विकर्ण, शिशुपाल, जरासंध, शल्य आदि सबको आहत कर चुका था। जिस कृष्णा–पांचाल नरेश की पुत्री द्रौपदी के सौन्दर्य की चर्चा सम्पूर्ण भारत में थी, वह यौवनवाली, घुटने तक स्पर्श करने वाले घुंघराले बालों वाली स्वयं उनके समक्ष उपस्थित थी। ऐसा लगता था जैसे कामदेव की समस्त कलाएँ उसमें समा गई थी। घायल हुए, आहत हुए कोई नहीं बचा। न पांडव, न कौरव और नही कोई अन्य नर पुंगव।

कृष्णा के भाई धृष्टद्युम्न ने घोषणा की– जो नरश्रेष्ठ, चक्र में घूमती हुई मछली की आंख का लक्ष्य भेद कर पाएगा कृष्णा उसी को पतिवरण करेगी। एक, एक राजा लक्ष्य भेद के लिये आगे बढ़ा, अभी धनुष के लिये हाथ ही बढाया था कि कृष्णा की चीत्कार वायुमंडल में गूँज गई – **'नाहं वरियामि सूतम्'** – सूत का वरण नहीं करूंगी। अपमानित कर्ण अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। पांडवों को अता–पता नहीं था। लाक्षागृह में उनके भस्म हो जाने की कथा सर्वत्र फैल चुकी थी। लक्ष्य भेद होगा भी या नहीं, संशय की स्थिति बन गई थी। सभी राजा तो पराजित हो चुके थे।

ब्राह्मण दल से एक भिक्षोपजीवी ब्राह्मण उठ कर रंगमंच की ओर अग्रसर हुआ। महाराज द्रुपद के समीप पहुंच कर प्रतियोगिता में भाग लेने की अनुमति मांगी। अनुमति मिलते ही वह धनुष तीरों की तरफ बढ़ा। पलक झपकते ही उसने लक्ष्य भेद कर दिया। कृष्णा ने निःसंकोच प्रत्युत अत्यन्त उल्लासपूर्वक जयमाला, वरमाला उसके गले में डाल दी। वह ब्राह्मण विश्व का अन्यतम् धनुर्धर सव्यसाची अर्जुन होगा, इसकी कल्पना भी असंभव थी। महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न को लगा कृष्णा का स्वयंवर उनकी मनोकामना पूरी करने के स्थान पर दारूण चिंता का कारण बन गया। भिक्षोपजीवी ब्राह्मण के साथ राजलक्ष्मी कृष्णा कैसे निर्वाह कर पाएगी?

पूर्णयौवन प्राप्त पाँच बेटों की माँ कुन्ती का असमंजस में पड़ना स्वाभाविक था। वह खूब अच्छी तरह जानती थी कि यौवन में काम का ज्वार कितना तीव्र होता है। कौमार्य अवस्था में वह स्वयं कर्ण को जन्म दे चुकी थी। भीम भी हिडिम्बा के साथ अल्पकालीन वैवाहिक जीवन के पश्चात् घटोत्कच को जन्म देकर परिवार के पास लौट आया। पाँचों में श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन ही था जो स्वयंवर में भाग ले सकता था। ऊपर वाले दो भाई और नीचे वाले दो भाई प्रतियोगिता में भाग ही नहीं ले सकते थे और यदि लेते भी तो उनको उतनी ही भीषण पराजय मिलनी थी जितनी अन्य नरेशों को मिली थी।

और अब प्रतियोगिता जीतकर अर्जुन कृष्णा को घर ले आया था। इन सभी के नेत्रों में कृष्णा के लिए अनुराग– आसक्ति का भाव समझ लेना कुन्ती के लिये असंभव नहीं था। *(डॉ. सातवलेकर ने यह दायित्व युधिष्ठिर को दिया है जो स्वयं कृष्णा पर आसक्त था, इसलिये मुझे स्वीकार्य नहीं है)* यह आसक्ति पारिवारिक विग्रह का कारण बन सकती है, इसीलिए कुन्ती ने तय किया कि येनकेन प्रकारेण अर्जुन के मन में द्रौपदी के लिये एक मात्र अधिकार को द्रवीभूत करना होगा।

पाण्डव सुसंस्कारित थे। उनके मन में अग्रजों के लिये आदर और छोटों के लिये स्नेह घुट्टी में मिला हुआ था। अर्जुन को बरगलाया जा सकता था कि यदि उसने कृष्णा से विवाह किया तो दोनों बड़े भाइयों के विवाहित न होने के कारण सामाजिक लांछना मिलेगी। इसे परिवेदन कहा जाता है और परिवेदन पाप है और यह वेद विरुद्ध भी है। यह पाप पूरे परिवार को झेलना पड़ेगा। कन्यादान व्यक्ति विशेष को नहीं पूरे परिवार को मिलता है। अर्जुन पर माँ के कथन का सार्थक असर पड़ा। परिवार में विग्रह का कारण उसका द्रौपदी के लिये न्यायोचित, स्वाभाविक आकर्षण भी नहीं बनाना चाहिये। इसलिये वह तटस्थ हो गया, मौन हो गया। द्रौपदी की दृष्टि से उसका यह अनासक्त भाव छिपा न रह सका । दिल की बात दिल ही में रह गई। तीनों ही तर्क तत्कालीन सामाजिक संदर्भो में भी कितने लचर और अर्थहीन थे।

डॉ. सातवलेकर ने हिडिम्बा को अत्यन्त सुन्दरी बताया और कुन्ती ने भीम से उसके विवाह की अनुमति दी थी, अंकित किया है। परिवर्तित परिस्थिति में यहाँ कुन्ती ने भीम का हिडिम्बा से विवाह स्वीकार ही नहीं किया। उसे हिडिम्बा का कामतृप्ति का आधार माना। यह भी कितना मोथरा तर्क था। वनवासी, स्वच्छन्द परिवेश में पली–बढ़ी युवती नगरीय परिवेश में आना ही स्वीकार नहीं करती तो उसे कामपीड़िता घोषित कर, परिवार से छेक दो।

परिवार में जिस मोर्चे को कुन्ती ने सँभाला था, द्रुपद और धृष्टद्युम्न के सामने उसी मोर्चे को श्रीकृष्ण और वेदव्यास जी ने सँभाला। दोनों के कारण अलग–अलग थे पर हल एक ही निकलता था। ये दोनों ही आशंकित थे कि कृष्णा भाईयों में विग्रह का कारण बन सकती है। ऐसी स्थिति में दुर्योधन–चौकड़ी को इनका सर्वनाश करने में सुगमता हो जावेगी। इसके विपरीत यदि पाँचों पांडवों का विवाह कृष्णा के साथ कर दिया जावे तो पांडवों की शक्ति बिखरने के बजाय ज्यादा घनीभूत हो जावेगी क्योंकि कृष्णा रूप और बुद्धि की खान है। उनमें फूट कभी नहीं होने देगी।

इसके अतिरिक्त कृष्ण के स्वप्न–अत्याचारी शासकों का विनाश और धर्म की स्थापना में व्यवधान उपस्थित हो सकता है। पारिवारिक विग्रह में उलझे होने के कारण पांडव एक जुट नही रह पाएंगे। पांडवों की सम्पूर्ण शक्ति और पांचालों की, मित्रों सगे–सम्बंधियों सहित शक्ति, उनके (श्रीकृष्ण) उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक नहीं, अपरिहार्य है। द्रुपद और धृष्टद्युम्न ने पाँचों पाण्डवों से द्रौपदी के विवाह को आसानी से स्वीकार नहीं किया पांचालों में प्रचलित बहुपतित्व प्रथा का उदाहरण देने पर द्रुपद ने कहा कि उनका परिवार इस प्रथा को बहुत पहले ही छोड़ चुका है। उन्होने आशंका व्यक्त की कि अन्य नरेश कन्या पर लांछन लगाएंगे। कृष्ण और वेदव्यास जी ने विशेष परिस्थितियों में बहुपतित्व प्रथा और शास्त्रों का उदाहरण देकर उन्हें आश्वस्त किया। द्रुपद ने अपनी सहमति प्रदान कर दी।

सबसे पीड़ादायक कृष्णा और अर्जुन की नैसर्गिक प्रबल, निष्पाप, निष्कलुश भावनाओं का दमन, पारिवारिक सुख–शान्ति और कृष्ण के स्वप्न की पूर्ति में सहायक होने के नाम पर। अर्जुन और कृष्णा के समान रूप से सखा होने पर भी उनकी भावनाओं का आदर करने या प्रश्रय देने के स्थान पर समग्र पांडवों का हित साधन और अपने लक्ष्य की पूर्ति श्रीकृष्ण के लिये ज्यादा महत्वपूर्ण थी। व्यक्तिगत सम्बन्ध उनके लिये गौण थे। श्रीकृष्ण और वेदव्यास जी के परामर्श, पांडवों की अभिरुचि, माँ कुन्ती की सहमति, तथा स्वयं कृष्णा की स्पष्ट अनापत्ति को मानकर महाराज द्रुपद और युवराज धृष्टद्युम्न पाँचों पांडवों से कृष्णा के विवाह को सहमत हो गए।

द्रौपदी को गौण करके देखिए महाभारत का समस्त लालित्य समाप्त हो जाएगा। कथानक के अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र होने के कारण द्रौपदी पात्र का मूल्यांकन करना भी उचित होगा। द्रौपदी का समग्र सौन्दर्य और बुद्धिकौशल उसे विवस्त्रा, घसीट कर लाए बिना दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण के अभिमान को, धुपद सभा में लगी मर्मान्तक पीडा को, शान्ति कैसे मिल सकती थी? जबकि वे स्वयंवर के बाद से पल–पल मृत्युपीड़ा से बढ़कर अपमान की पीड़ा को, झेल रहे थे। मासिक स्राव से भीगी एक वस्त्र–पहिने, घसीटने के कारण वह वस्त्र भी गिर गया था। पूर्णतया विवस्त्रा द्रौपदी का रुदन–क्रन्दन वह भी कौरवों की राजसभा में? कितनी दारूण स्थिति थी।

इतनी विकट परिस्थिति में भी द्रौपदी के प्रखर प्रश्न ने सम्पूर्ण राजसभा को जिसमें सम्राट धृतराष्ट्र, साम्राज्ञी गांधारी, कौरव कुलभूषण भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य उपस्थित थे, सभी को विस्मयविमूढ़ ही नहीं किया निरुत्तर भी कर दिया। सभी सही उत्तर जानते थे कि हारा हुआ जुआरी पत्नी को दाँव पर नहीं लगा सकता था क्योंकि पत्नी, पत्नी है, सम्पत्ति नहीं। पर राजसभा के उस विषाक्त वातावरण में जिसमें सम्राट स्वयं **किं जितम् किं जितम्** कर रहे हों, अवश्यम्भावी अपमान से बचने के लिये अथवा स्वार्थ के वशीभूत वे मौन रहे। भीष्म का यह कथन कि राजा जो करता है, ठीक करता है, आग में घी डालना हुआ। उस पर तुर्रा यह कि वह अकेले युधिष्ठिर की पत्नी नहीं सब भाइयों की पत्नी थी। यह बात दाँव पर लगाने के शकुनी के प्रस्ताव में ही अन्तर्भूत थी और स्वीकृति देने वाला युधिष्ठिर भी जानता था कि शकुनि क्या चाहता था।

श्रीकृष्ण को इस घटनाक्रम का कुछ पता नहीं था। वह तो बलराम के साथ शाल्व से युद्धरत थे। वनवास भुगतते हुए चारों भाइयों ने समस्त कथा सुना दी। कृष्णा की भीषणतम दुर्गति क्यों हुई, कुरुश्रेष्ठों के होते हुए भी? किसी ने रोका नहीं, धिक्कारा नहीं, मौन रहे, यानि दुर्योधन और दुःशासन की काली करतूतों का समर्थन ही किया। बात गले नहीं उतरी। सच बात जानने के लिये कृष्णा से मिलना होगा। घोर अपमान से कुचली हुई सर्पिनी ने सम्पूर्ण घटनाक्रम और वार्तालाप सखा कृष्ण को सुना दिया। पांडवों की मनोकामना, संधि के विपरीत अपनी दृढ कामना भी प्रकट कर दी। महाराज महाबली द्रुपद की पुत्री, महारथी धृष्टद्युम्न की बहन, अद्वितीय और अनुपम कृष्णा की सखी को युद्ध चाहिए, वह भी कौरवों के समूल विनाश के साथ। कृष्ण के सब संशय मिट गए। वार्तालाप समझाइश आदि से कुछ नहीं होगा वहाँ तो पूरे कुए में भाँग पड़ी है। समझ में आई रूपसी, बुद्धिमती कृष्णा की महत्ता।

जो यह मानते है कि धर्मराज युधिष्ठिर अथवा अर्जुन ही के साथ कृष्णा का विवाह हुआ, वे मूलभूत त्रुटि करते है।

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास के ईश्वर के समस्त नाम वैज्ञानिक आधार लिए हुए हैं

● ओम प्रकाश आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का पहला वाक्य है– "(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें अ, उ, और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है।" स्वामी जी ने इन तीनों अक्षरों में ईश्वर के नामों की तीन श्रेणी बनाई हैं। अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्रज्ञादि नाम। वैसे तो इस समुल्लास में उन्होंने ईश्वर के 100 नामों का ज़िक्र किया है किन्तु इसमें से प्रथम नौ नामों को आधार मानकर हम इनके वैज्ञानिक स्वरूप पर विचार करेंगे।

1. विराट्, अग्नि, विश्व– 'विराट्' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है। वि उपसर्ग है। राज़ृ धातु है। इस राज़ृ धातु का अर्थ दीप्ति किया है। सामान्य भाष्य में दीप्ति का अर्थ चमक या प्रकाश होता है। परमात्मा का नाम विराट् इसलिए है क्योंकि वह चराचर जगत को प्रकाशित करता है। चर जगत् क्या है और अचर जगत् क्या है? चर जगत् चेतन प्राणियों का संसार है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट–पतंग, वृक्ष–वनस्पतियाँ आदि। अचर जगत् जड़ जगत् का संसार है। जैसे– पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, अग्नि, आकाश, नक्षत्र आदि। चर जगत् को परमात्मा कैसे प्रकाशित कर रहा है? यहाँ प्रकाशित जगत् से तात्पर्य ज्ञानप्रकाश से है। मनुष्य के शरीर की संरचना देखिए। विशाल से विशाल और सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की संरचना पर विचार कीजिए– परमात्मा के ज्ञान की पराकाष्ठा नजर आएगी। शरीर–विज्ञान रचना किसी जैव वैज्ञानिक से पूछकर मालूम कीजिए। वह बताएगा कि शरीर संरचना कितनी जटिल है। परमात्मा का ज्ञान प्रकाश स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। इसी प्रकार वृक्ष–वनस्पतियों की संरचना देखिए। वहाँ आपको एक से एक कलाकृति, सौन्दर्य, आकर्षण, रम्यता नजर आएगी। परमात्मा का यह ज्ञानप्रकाश नहीं तो और क्या है? एक साधारण पत्ती की काट–छाँट और सुन्दरता ही परमात्मा की कला का स्मरण करा देगी। जड़ जगत् का तो संसार ही निराला है। सूर्य चमक रहा है। इसके प्रकाश से पृथ्वी प्रकाशित हो रही है। सूर्य में प्रकाश कहाँ से आया? स्पष्ट उत्तर होगा कि उसमें परमात्मा का ही प्रकाश है। बड़े–बड़े ब्रह्माण्ड उसी से चमक रहे हैं। उस जड़ जगत् में प्रकाश का मूल स्रोत परमात्मा ही है। राज़ृ धातु परमात्मा के नाम का वैज्ञानिक आधार लिया है कि नहीं? अवश्य लिया है।

'अग्नि' शब्द की व्युत्पत्ति अञ्चु धातु से बताई है। इस धातु का अर्थ है गति, पूजन। यह गत्यर्थक धातु है। इसके तीन अर्थ हैं– ज्ञान, गमन और प्राप्ति। पूजन शब्द का अर्थ सत्कार बताया है। अञ्चु– अग, अगि, इण् इन धातुओं का मूल है। ये तीनों धातु गत्यर्थक हैं। इनसे अग्नि शब्द सिद्ध होता है। यहाँ अग्नि शब्द से तात्पर्य जलने वाली भौतिक अग्नि से नहीं है। परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। उसी में जड़–चेतन सभी गमन कर रहे हैं। वही प्राप्ति के योग्य है। उसी को प्राप्त करना हमारा परम लक्ष्य है। चूँकि परमात्मा सर्वव्यापक है, इसलिए उसका आना–जाना कहाँ सम्भव है? आना–जाना तो वहाँ होगा जहाँ वह नहीं है। वास्तव में यह अनन्त ब्रह्माण्ड ही उसमें गमन कर रहा है। चर–अचर सब उसी में गमनशील हैं। वही परमात्मा सत्कार करने योग्य है। परमात्मा का सत्कार कैसे? उसकी आज्ञा का पालन करना ही उसका सत्कार है। जो उसकी आज्ञा का पालन करता है वह उसका सत्कार करता है। अग्नि शब्द परमात्मा के वैज्ञानिक आधार को लिए हुए है।

'विश्व' शब्द की व्युत्पत्ति विश् धातु से बताई है। इसका अर्थ प्रवेशन होता है। सामान्य अर्थ में प्रवेश का अर्थ अन्दर जाना होता है। इस नाम की वैज्ञानिकता पर विचार करें। परमात्मा की अनन्तता की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में अनन्त रूप से परिव्याप्त है। यह सकल भूत जगत् उसी में प्रवेश कर रहा है। हमारा एक सौरमण्डल है उसमें आठ ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। ग्रहों के उपग्रह हैं। यह सौरमंडल आकाशगंगा में है। आकाशगंगा में अनेक सौरमंडल हो सकते हैं। ऐसी अनेक आकाशगंगाएँ हैं। इन सभी का प्रवेशन सर्वव्यापक परमात्मा में ही तो हो रहा है। परमात्मा को एकदेशीय मानने वाले जड़ मूर्तिपूजक जरा इस शब्द पर तो विचार और चिन्तन–मनन करें। अनन्त परमात्मा की मूर्ति बनाना कैसे सम्भव हो सकता है। आकाश तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। यह जड़ तत्त्व वायु से भी सूक्ष्म तत्त्व है। यह आकाश ही परमात्मा में प्रवेशित है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल भौतिक जड़ पदार्थ, भूगोल उसी व्यापक परमात्मा में आवागमन कर रहे हैं। विश्वा नाम परमात्मा की विशालता और व्यापकता का संकेतक है। यह शब्द ईश्वर के वैज्ञानिक स्वरूप को अभिव्यक्त कर रहा है।

2. हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस– 'हिरण्यगर्भ' एक वैज्ञानिक, भौगोलिक, पारिभाषिक शब्द है। हिरण्य को सामान्य अर्थ सोना होता है। सोना चमकदार धातु है जिसमें से तेज निकलता है। वह चमकीलापन तेजस्वरूप को प्रकट करता है। सोने के समान अति तेज को धारण करने वाले सूर्यादि प्रकाशवाले लोक हैं। प्रकाशवाले सूर्यादि लोकों का जो गर्भ है, उत्पत्ति स्थान है, वह परमात्मा है। इसलिए उसे हिरण्यगर्भ कहा गया है। वैदिक सम्पत्ति के लेखक पं. रघुनन्दन शर्मा ने इस शब्द की बड़ी मनोज्ञ व्याख्या की है। वे वैदिक सम्पत्ति पुस्तक में लिखते हैं कि आरम्भ में परमात्मा ने जीवों में प्रेरणा करके सारी प्रकृति में हलचल उत्पन्न कर दी। इस गति से प्रकृति के पाँचों कर्म उत्पन्न हुए। अग्नि का गुण ऊपर जाना, जल का गुण नीचे आना, पृथ्वी के आकर्षण गुण वाले परमाणुओं से ठहराना, वायु के प्रसारण गुण, आकाश के परमाणु गमन के लिए स्थान दिए। फलस्वरूप सारा परमाणु समूह चक्राकर गति में घूम जाता है। यही चक्राकार गति में फिरनेवाला आदिम प्रकृतिपुंज वेद में हिरण्यगर्भ और लोक में ब्रह्मा कहा गया है। ब्रह्मा, आत्मभू, सुरश्रेष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश स्वयंभू और चतुरानन एक ही पदार्थ के नाम हैं। इसमें ब्रह्मा और हिरण्यगर्भ को एक ही पदार्थवाला बताया गया है। इस प्रकार यह नाम पूर्णतः वैज्ञानिक है।

'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति 'वा' धातु से बताई है। इसका अर्थ गतिगन्धन लिखा है। गन्धन हिंसन का द्योतक है। हिंसन अर्थात बलवानों में बलवान। परमात्मा सबसे बलवान है क्योंकि वही सृष्टि का उत्पत्ति और प्रलयकर्ता है। सृष्टि और प्रलय परमात्मा के अलावा किसी की सामर्थ्य में नहीं है। बड़े–बड़े ब्रह्माण्ड उसी के नियन्त्रण में है। एक सामान्य तूफान से धरती पर तहलका मच जाता है। फिर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का स्वामी परमात्मा कितना बलवान होगा, कल्पना नहीं कर सकते। वही अपनी शक्ति से चराचर जगत् को धारण करता है। सृष्टि का प्रलय करता है। सब बलवानों से बलवान है। इसी कारण उसका नाम वायु है। यह भौतिक वायु नहीं है जिसका अर्थ हवा होता है। अग्नि के समान वायु शब्द भी विशेष अर्थ का प्रकाशन करता है।

'तैजस' शब्द की व्युत्पत्ति तिज् धातु से बताई है। इसका अर्थ निशान अर्थात् चमक या तेज होता है। तिज धातु से तेज और उससे तैजस शब्द बना। परमात्मा का नाम तैजस इसलिए है क्योंकि वह तेजस्वी लोकों का प्रकाशक है। सूर्य तेजस्वी लोक है। तारे तेजस्वी लोक हैं। समस्त तेजस्वी लोक स्वतः प्रकाशित हैं। उनमें प्रकाश कहाँ से आता है? वह प्रकाश परमात्मा से ही आता है। तेज ऊर्जा है। वह अक्षय ऊर्जा है। अग्नि में तेज है। तेज परमात्मा के कारण है। अतः यह नाम भी वैज्ञानिक है।

3. ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ– 'ईश्वर शब्द ईश धातु से बना है। इसका अर्थ ऐश्वर्य बताया है। परमात्मा ऐश्वर्यशाली है। इसी से उसका नाम ईश्वर है। परमात्मा का ऐश्वर्य क्या है? सब कुछ उसी का ही तो है। समस्त दृश्य जगत् उसका ऐश्वर्य है। सोना, चाँदी, हीरा, मोती, धन–धान्य परमात्मा के ऐश्वर्य हैं। भूमि, वृक्ष, वनस्पतियाँ, जल, वायु, ऊर्जा, सब उसके ऐश्वर्य हैं। सारी प्रकृति उसका ऐश्वर्य है। इन ऐश्वर्यों का वह स्वामी है। आप कहेंगे कि धन–दौलत तो हमारा है। हम उसका उपभोग करते हैं। उपभोग अवश्य करते हैं किन्तु सब कुछ आपको छोड़ना पड़ता है। अपने साथ एक तिनका भी नहीं ले जा सकते, क्योंकि वह सम्पदा ऐश्वर्यशाली परमात्मा की है। वह यहीं की यहीं रहेगी। वह कितना ऐश्वर्यशाली है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। सृष्टि की विशालता का अनुमान करने के लिए प्रकाश वर्ष का पैमाना कल्पित किया गया है। करोड़ों प्रकाश का पैमाना भी उसकी ऐश्वर्यशालिता को नहीं माप सकते। यह ईश्वर नाम वैज्ञानिक आधार को प्रकट करता है।

'आदित्य' शब्द की व्युत्पत्ति आदिति शब्द से हुई है। अदिति 'अ' उपसर्ग पूर्वक 'दो' धातु से बना है। इसका अर्थ अवखण्डन है। अदिति से आदित्य शब्द सिद्ध हुआ है। दिति का अर्थ अवखण्डन होता है। अवखण्डन अर्थात् टुकड़े–टुकड़े अर्थात् विनाश। 'अ' उपसर्ग नहीं का द्योतक है। जिसका विनाश न हो, वह अदिति है। इसका भाव जिसमें हो वह आदित्य है। परमात्मा का विनाश नहीं होता, इसी कारण उसका नाम आदित्य है। यह सभी जानते हैं कि किसी भी पदार्थ का विनाश नहीं होता, केवल उसका रूप बदल जाता है। कण–कण में व्याप्त परमात्मा अवखण्डन से रहित है। भले ही प्रकृति का परिवर्तन होता है, पर उसमें परिव्याप्त परमात्मा उस परिवर्तन से रहित है। इसका वैज्ञानिक आधार यह है कि परमात्मा विनाश से रहित है।

'प्राज्ञ' शब्द की व्युत्पत्ति प्र उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से हुई है। ज्ञा का अर्थ अवबोधन होता है। अवबोधन अर्थात् जिसको सब कुछ बोध हो। बोध अर्थात् ज्ञान हो। परमात्मा चर–अचर सब जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, इसलिए उसका नाम प्राज्ञ है। चूँकि वह आत्मा को अन्दर भी विराजमान है इसलिए प्राणी जैसा सोचता है उस सोच को वह तुरन्त जान लेता है। भले ही वह अभिव्यक्त करे या नहीं। वही जानता है कि सूर्य में कितनी ऊर्जा है, कितनी क्षमता है। असंख्य सूर्यों में कितनी शक्ति है। वे कितने दिनों तक कार्य करेंगे। सृष्टि की सारी जानकारी उसको है। इसी कारण यह वैज्ञानिक आधार वाला नाम प्राज्ञ है। जितना ही चिन्तन करेंगे, विज्ञान उतना ही प्रकट होगा।

ऐसे ही परमात्मा का प्रत्येक नाम कोई न कोई वैज्ञानिक आधार लिए हुए है। यह विशेषता सिर्फ वेद में आए परमात्मा के नामों में मिलेगी, अन्य नामों में नहीं। हमें परमात्मा के नामों का चिन्तन–मनन करना चाहिए। ईश्वर के नामों की महत्ता दर्शाने के लिए एवं उसके ऊपर पूर्ण प्रकाश डालने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के चौदह समुल्लासों में ईश्वर–नाम को प्रथम स्थान दिया है ताकि लोगों में जो नाम विषयक भ्रान्ति है वह मिट सके।

आर्य समाज रावतभाटा
वाया कोटा (राजस्थान) 323307

शिक्षा क्षेत्र में हमारी समस्याएं

● डा. अशोक आर्य

मानव जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। इन समस्याओं के समाधान के लिए यह मनुष्य सदा इधर–उधर भटकता है। इस प्रकार की ही समस्याओं में विद्यार्थी जीवन की अनेक समस्याओं के अंतर्गत विद्यार्थियों के अनुशासन की भी एक भयंकर समस्या आज हमारे सामने आ कर खड़ी हुई है। इस समस्या से त्राण पाने के लिए हमारी सरकार, हमारे परिवार, हमारे सम्बन्धी आदि सब प्रयत्न करते हैं किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकल पा रहा क्योंकि किसी भी समस्या का निदान तब ही हो सकता है, जब उसके निदान के लिए ठीक दिशा में कार्य किया जाए, उस समस्या के कारण के मूल तक जाया जाए। इसके मूल तक जाएँ कैसे ? इसका उत्तर वह माता–पिता, जिनका अपनी संतान के लिए उत्तरदायित्व होता है, कहते हैं कि न तो हमारे पास समय ही है और न ही हम इस समस्या का निदान ही जानते हैं। हमने अपने बच्चे को खूब मार पीट कर देख लिया किन्तु वह है कि बुराइयों को छोडता ही नही। डाँटना, मारना, पीटना समस्या का कुछ सीमा तक तो निदान हो सकता है किन्तु यह स्थाई निदान नहीं है। यदि हम वास्तव में ही हमारे छात्रों की अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं का निदान चाहते हैं तो निश्चय ही हमें वेद की शरण में जाना होगा क्योंकि विश्व की सब समस्याओं का निदान वेद में ही परमपिता परमात्मा ने देकर यह वेद का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही हमें दे दिया था।

हम विद्यार्थियों की जिस अनुशासन सम्बन्धी समस्या की चर्चा कर रहे हैं, इस समस्या ने हमारे शिक्षाविदों को अत्यधिक परेशान कर रखा है। यह समस्या हमारे शिक्षाशास्त्रियों के लिए अत्यधिक परेशानी का कारण बन गई है। जब हम अपने क्षेत्र में आने वाले समाचार पत्रों पर दृष्टि डालते हैं तो हम पाते हैं कि यह समाचार हमारे विद्यार्थियों के काले कारनामे यथा उद्दंडता, लड़ाई–झगड़ों आदि, जिन्हें हम अनुशासनहीनता के नाम से जानते हैं, से भरे मिलते हैं। विद्यार्थियों की इस अनुशासन हीनता का चित्र हमें एक लेख से मिलता है जिसे "प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक झाँकी" शीर्षक के अन्तर्गत हमारे एक महान् शिक्षाविद् डॉ. महेशचंद्र सिंघल ने लिखा है, से मिलता है।

डॉ. सिंघल लिखते हैं कि "आज की शिक्षा प्राचीन शिक्षा से पूर्णतया विपरीत पड़ती है। न वैसा वातावरण है, न वैसे गुरु और शिष्य ही। अधिकतर विद्यालय नगरों के मध्य दिखाई पड़ते हैं। जहाँ द्यूत और कोलाहल का बोलबाला है। चारों और चटपटी चमकीली वस्तु बेचने वाली दुकानें तथा सिनेमा थियेटरों का दौरा दौरा है, जिनकी ओर से आँखें बंद कर लेना सरल काम नहीं है। आज के विद्यार्थी के कानों में चारों और से अश्लील शब्द पड़ते हैं। और उसकी जिहवा पर भी अश्लील गाने चढ़े रहते हैं। वह पुस्तकें भी पढ़ता है तो प्रेम और जासूसी कहानियों वाली, जो पतन की ओर ले जाने वाली हैं।

आज गुरु शिष्य सम्बन्ध कैसे हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं। अध्यापक को अपनी जान बचानी कठिन हो रही है। वह छात्रों से ऐसे ही डरता है जैसे शेर से बकरी। उसके लिए मैनेजर, हैडमास्टर और छात्र ये तीनों ही अफसर हैं। यह वही भारत है जहाँ गुरु को सब से ऊँचा पद दिया जाता था। लेकिन आज उसकी दशा दयनीय है। पाठक तनिक सोच कर देखें इस अधोगति को।"

(गुरुकुल पत्रिका श्रद्धानंद जन्म शताब्दी अंक, मार्च 19787 ई.)

अपने इस लेख में विद्वान् लेखक ने आज के विद्यार्थी की अनुशासनहीनता और आज के अध्यापक की दयनीय अवस्था का चित्रण करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि आज की मैकाले शिक्षा पद्धति से हमारी गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति कहीं अधिक उत्तम ही नहीं थी अपितु वह शिक्षा पद्धति एक प्रकार से सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति थी। इस शिक्षा में गुरु को किसी अधिकारी का कभी डर नहीं होता था। वह अपने विद्यालय का स्वामी होता था तथा वानप्रस्थाश्रम में होने के कारण वह किसी से शिक्षा के लिए कोई धन भी न लेता था। शिक्षा दान को वह अपना कर्तव्य समझता था। हाँ! भिक्षा से सब विद्यार्थियों का जीवन यापन करना होता था। विद्यार्थी भिक्षा के लिए निकट के गाँव अथवा नगर में जाते थे और जो मिलता था, लाकर गुरु चरणों में डाल देते थे। गुरु इस भिक्षा के प्रतिफल से ही स्वयं का तथा सब ब्रहमचारियों का भरण पोषण करता था और कभी कोई अभ्यागत आ जाता था तो उसका भरण का कार्य भी इस भिक्षा में प्राप्त सामग्री से ही होता था।

इस के साथ ही साथ उस समय का गुरु अपने विद्यार्थियों, जिन्हें उस युग में ब्रह्मचारी कहा जाता था, को अपने अंतःवासी मानता था तथा उन सबका पालन उस प्रकार ही करता था, जिस प्रकार उसके अपने परिवार में उसके माता तथा परिजन करते थे। विद्यार्थी को पता ही न चलता था कि वह किसी गुरुकुल में है अथवा अपने घर में। यहाँ सब बच्चों को समान शिक्षा और समान स्नेह मिलता था, चाहे वह राजा की संतान हो अथवा रंक की। कृष्ण और सुदामा का उदाहरण तो हम सदा देखते ही हैं। इस प्रकार की शिक्षा का ही परिणाम होता था कि विद्यार्थी गुरु आज्ञा को देवाज्ञा मानते हुए उसे पूर्ण करने के लिए अपने प्राण तक भी देने को तैयार रहते थे। इस निमित्त हम अरुणी का उदाहरण देखते हैं, जिसने अपनी गुरु आज्ञा की पूर्ति के लिए स्वयं को सर्दी की ऋतु में उस मेंड पर डाल दिया जहाँ से खेत के पानी का निकास वह बंद नहीं कर पा रहा था। इस प्रकार के समर्पित विद्यार्थी उत्तम तथा उच्च वैदिक शिक्षा के आधार पर अपने देश, अपने समाज को आगे ले जाने का कारण बनते थे।

आज के विद्यार्थी के अन्दर अनुशासनहीनता इस सीमा तक बढ़ गई है कि इसे समझाने के लिए आज हमें किसी प्रकार के उदाहरण आदि देने की आवश्यकता अनुभव नहीं हो पा रही क्योंकि इस सम्बन्ध में आज सब जानते हैं और चिंतित भी हैं। विद्यार्थियों में निरंतर बढ़ रही अनुशासनहीनता तथा उनकी उद्दंडता का मुख्य कारण क्या है?, इसे खोजने का यत्न कोई नहीं करता। क्योंकि मुख्य कारण की खोज के बिना हम उस समस्या का प्रतिकार नहीं कर सकते, इसलिए इसके मुख्य कारण की खोज आवश्यक है। इस कारण को खोजने का जब हम प्रयास करते हैं तो हम पाते हैं किः–

1. प्रथम कारण तो हम दूरदर्शन के अवलोकन को ही पाते हैं। दूरदर्शन पर गंदे गंदे चित्रों का प्रदर्शन कराते हुए फूहड़ गाने व धारावाहिक दिखाए जाते हैं, जो विद्यार्थी को अनुशासन से दूर ले जाने वाले होते हैं। इससे विद्यार्थी में अनुशासनहीनता आती है।

2. सार्वजनिक स्थालों पर अश्लील चित्रों का प्रदर्शन भी इसका दूसरा कारण है।

3. आज का विद्यार्थी सिनेमा का अभ्यासी हो गया है, जहाँ अश्लील दृश्य और अश्लील गीत ही उसे मिलते हैं।

4. आज धार्मिक और नैतिक शिक्षा का अभाव हो गया है।

5. परिवारों में भी अनुशासन नहीं रहा।

ये कुछ कारण हमें दिखाई देते हैं, जो आज के विद्यार्थी में उद्दंडता पैदा करने वाले हैं तथा उसे अनुशासन से दूर ले जा रहे हैं। धार्मिक और नैतिक शिक्षा के अभाव में विद्यार्थी निरंतर नैतिक पतन की और बढ़ रहा है। धर्म के बिना उसका जीवन लगातार गिरता चला जा रहा है। वेद तो कहता है कि यदि वेदादि शास्त्रों की शिक्षा विद्यार्थी को दी जाए तो वह निश्चय ही अपने शिक्षकों को अपने माता–पिता के समान मानते हुए उनकी आज्ञा का पालन करते तथा अपने कर्तव्यों की पूर्ति में अपना समय लगाते और गुरुजन भी निश्चय ही अपने विद्यार्थी को अपने पुत्र के समान मानते हुए उसे स्नेह देते हुए उसे सदाचारी बनाने का पुरुषार्थ करते किन्तु आज ऐसा नहीं है। यह सब पूर्ववत इस प्रकार हो सके, इसके लिए हमें वेद के उपदेशों को मानना होगा। वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है, इसकी चर्चा हम वेद के विभिन्न मंत्रों की व्याख्या करते हुए आगे करेंगे।

104 शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी 201010
गाजियाबाद चलभाष 0971828068

☞ *पृष्ठ 07 का शेष*

एक या पांच

1– युधिष्ठिर ने द्यूत सभा में यह नहीं कहा कि कृष्णा मेरी पत्नी है और इसे दाँव पर लगाने का मुझे अधिकार है। इसके विपरीत अत्यधिक क्रोधित भीम ने सहदेव से कहा कि आग ले आओ, इसके वह हाथ जला देता हूँ जिनसे द्रौपदी को दाँव पर लगाया था। क्या भीम की इस स्वतःप्रेरित त्वरित प्रतिक्रिया से यह ध्वनित नहीं होता कि द्रौपदी अकेले युधिष्ठिर की पत्नी नहीं थी?

2– यदि अर्जुन के साथ द्रौपदी के विवाह को मानें तो युधिष्ठिर की "धर्मराज" छवि का मटियामेट हो जाता है। वीर्यशुल्का द्रौपदी द्वारा जयमाला–वरमाला पहनाने से विवाह का 90 प्रतिशत कार्य समाप्त हो जाता है। शेष संस्कार तो औपचारिकता मात्र रह गया था। इन परिस्थितियों में छोटे भाई की पत्नी से युधिष्ठिर का विवाह "अपहरण" कहलायेगा। अर्जुन से विवाह के पश्चात् द्यूत सभा में द्रौपदी को दाँव पर लगाने का कोई औचित्य ही नहीं बनता।

3– खांडव वन में और एक वर्ष के अज्ञातवास की अवधि में केवल द्रौपदी ही पाण्डवों के साथ गई थी। अन्य विवाहिता पत्नियां अपने–अपने मायके चली गई थीं।

4– अश्वत्थामा द्वारा रात में पांडव पक्ष का सर्वनाश करने पर उसने एक बार नहीं, अनेक बार कहा कि उसने द्रौपदी के सभी पुत्रों को मार डाला है। यह नहीं कहा कि युधिष्ठिर के सभी पाँचों पुत्रों को मार डाला।

5– सबसे ठोस और अकाट्य प्रमाण यह है कि हिमालय की यात्रा में, बर्फ में शरीर को गलाकर मारने की प्रक्रिया में पाँचों पांडवों के साथ केवल द्रौपदी ही गई थी, किसी पाँडव की और पत्नी नहीं।

उपरोक्त सभी विवरणों से यही निष्कर्ष

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

जो निम्न और नीच विचार रखते हैं वह शूद्र हैं

महर्षि दयानन्द से पूर्व समाज में बहुविध सामाजिक बुराईयां थी। सती प्रथा, स्त्री व शूदों को वेदाध्ययन का अधिकार न होना, सामाजिक विषमता, ऊंच–नीच की भावना, निर्धन व निम्न जातियों के लोगों को कुंओ से पानी भरने की मनाही, उनसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार, निर्बलों पर न्याय व अत्याचार, एक ही जाति में विवाह जो स्वास्थ्य, शारीरिक बल व लम्बी आयु में बाधक होता है, अन्तर्जातीय विवाह अप्रचलित थे, चूल्हे–चौके का अधिक महत्व था, लोग दूसरे के हाथ का पकाया गया भोजन तक नहीं करते थे, शूद्रों के मन्दिरों में प्रवश की समस्या आदि न जाने कितनी समस्यायें थी। महर्षि दयानन्द द्वारा 1875 में आर्य समाज की स्थापना करने से इन सभी अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वासों व सामाजिक विषमताओं वाली परम्पराओं पर कुठाराघात किया गया और वेदों के अनुसार सभी मनुष्य समान है, सभी आर्य हैं, प्राचीन काल में शूद्र वह होता था जो ब्राह्मणों के घरों में भोजन बनाने के साथ श्रम व यांत्रिकी के कार्य करता था। छुआछूत करना वेदों की आज्ञा के विरूद्ध है। सभी को यज्ञोपवीत धारण, सन्ध्योपासना व यज्ञ करने का अधिकार है। गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार विवाह करने का अधिकार है। बहुत से अन्त्यज परिवारों के भाई गुरूकलों में पढ़कर पण्डित बने, बहुतों ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ को पढ़कर अपने जीवन का उद्धार व उन्नति की। **स्वामी अदभुतानन्द सरस्वती व अन्य इसके प्रमाण हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ही वस्तुत सामाजिक क्रान्ति के जनक हैं। सामाजिक असमानता को दूर करने का सर्वाधिक श्रेय महर्षि दयानन्द जी व उनके अनुयायियों को ही है।** इस पृष्ठभूमि में हम यह कहना चाहते हैं कि आज समाज में शूद्र कोई नहीं है। जिनके विचार शूद्र व अनुचित हैं और जो मन में निम्न व नीच विचार रखते हैं, वही वस्तुत शूद्र संज्ञा के अधिकारी हैं, वह चाहे किसी भी रूतबे के कोई भी क्यों न हों। **मनुष्य पहचान उसके जन्म से नहीं उसके कर्मों व आचार विचारों से होती है।** सद्कर्मों को करके मनुष्य श्रेष्ठ या आर्य बनता है और बुरे कर्मों को करके अनार्य व दुर्जन।

मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121

****

मन्त्रगीत–

नीति सनातन हमें सिखाओ

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः।। ऋ.6.45.3।।

सहज सुपथ पर हमें चलाओ।
नीति सनातन हमें सिखाओ।।
प्रीति तुम्हारी महिमामय है।
उत्तम मति गति गरिमामय है।
जो इसके अनुगामी बनते,
उनका हर पग पाथ अभय है।
दिशा शुभंकर हमे दिखाओ।
नीति सनातन हमें सिखाओ।।1।।

हुए धन्य वैज्ञानिक ऋषि हैं।
दिखा गये श्रुति द्योतन दिशि हैं।
त्याग तपस्या सदाचार कृषि है।
हमें वही आलेख लिखाओ।
नीति सनातन हमें सिखाओ।।2।।

दीन हीन क्षय क्षीण न होती।
चाल मन्द गति हीन न होती।
सर्वत्र सुरक्षक सम्प्रेरक
लोभ क्षोभ में लीन न होती।
प्रीति कीर्ति नवनीत चखाओ।
नीति सनातन हमें सिखाओ।।3।।

देव नारायण ''देवातिथि''
अलीगढ़

संगठनों को क्रियाशील बनाकर आर्य समाज का स्वर्ण युग लायें

जिन लोगों की आयु इस समय 80 वर्ष और उसे अधिक है उन्होंने आर्य समाज का स्वर्ण युग देखा है जब सारे भारत में आर्य समाज का ही बोलबाला था और उत्तर भारत में पंजाब का लाहौर शहर आर्य समाज का विशेष केन्द्र था और दक्षिण में हैदराबाद तक इसकी धूम मची थी। 1939 में आर्य समाज को हैदराबाद में सत्याग्रह करना पड़ा था जब वहां के निज़ाम ने आर्य समाज के धर्म प्रचार पर पावन्दी लगा दी थी। हजारों व्यक्ति देश भर से वहां जाकर गिरफ्तार हुये और निजाम को झुकना पड़ा।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में अपने देश में अपने राज्य अर्थात स्वराज्य की कल्पना की थी। इसलिये महात्मा गांधी ने जब स्वतंत्रता के लिए सत्याग्रह शुरू किया तो उसमें भाग लेने वाले 80 प्रतिशत लोग आर्य समाजी ही थे, ऐसा वर्णन कांग्रेस के इतिहास में डॉ. पटटाभिसीतारमैया ने किया है। उस समय आर्य समाज के नेता श्री स्वामी श्रद्धानन्द थे जिन्होंने अछूत कहे जाने वाले लोगों को दलित नाम दे कर उनके उद्धार का कार्य महात्मा गांधी से भी पहले शुरू कर दिया था।

परन्तु अग्रेजों की कूट नीति के कारण देश का विभाजन हो गया इस से आर्य समाज को बड़ी हानि हुई क्योंकि आधे से अधिक पंजाब लाहौर सहित पाकिस्तान में चला गया। परन्तु फिर भी लोगों ने हिम्मत नहीं हारी और वहां के हिन्दुओं ने भारत में आकर नई आर्य समाजों की स्थापना कर ली, लेकिन आर्य समाज का प्रचार कुछ ढीला पड़ गया। आर्य समाज की शिक्षा संस्थायें तो सारे भारत में डी.ए.वी के नाम से खुल गई परन्तु वेद प्रचार में कमी आ गई और आर्य समाज केवल हवन यज्ञों तक ही सीमित रह गया।

महर्षि दयानन्द ने जब आर्य समाज की स्थापना की थी तब आर्य समाजों में केवल रविवार को ही हवन तथा सत्संग होता था और महर्षि ने सब आर्यों को आदेश दिया था कि अपने–अपने घरों में प्रातः सांय सन्ध्या हवन किया करें।

उन्होंने यह कहा था कि आर्य समाज कोई नया मत अथवा सम्प्रदाय नहीं है। हमारा धर्म तो सत्य सनातन वैदिक धर्म है। उन्होंने 31 दिसम्बर 1880 को आर्य समाज मुलतान के मन्त्री मा. दयाराम वर्मा को पत्र लिख था कि आने वाली जनगणना में सब लोग अपना धर्म वैदिक तथा जाति आर्य लिखायें परन्तु आर्य नेताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और घरों में भी बहुत कम लोग सन्ध्या हवन करते हैं इसलिये परिवार आर्य नही बनें कुछ आर्य समाजों में दैनिक हवन तो होते है परन्तु सब आर्य समाजों को प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या तथा सत्संग होना चाहिए। हवन चाहे एक ही समय हो। आर्य प्रतिनिधी सभायें अपने–अपने प्रदेशों की आर्य समाजों को यह आदेश दें तथा वेद प्रचार की योजना बनायें आजकल टी.वी. चैनल प्रचार का बड़ा साधन हैं। समाज सुधार तथा देश उद्धार की भी योजना आर्य नेताओं को वनानी चाहियें। उड़ीसा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी धर्मानन्द जी ने 200 आर्य परिवारों को वैदिक धर्म की दीक्षा दे दी है। बाकी सब प्रदेशों में भी ऐसे दीक्षा समारोह आयोजित होते हैं और सब आर्य समाजियों को अपना धर्म वैदिक ही लिखना चाहिए क्योंकि हिन्दु तो कोई धर्म नहीं हैं। हिन्दुस्तान के नागरिक होने के कारण ही हम सब हिन्दु कहलाते हैं। आर्य समाज के चुनाव सम्बन्धी सभा झगड़े समाप्त करके सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को शक्तिशाली बनाया जाये। जिस तरह श्री पूनम सूरी डी.ए.वी. को उन्नतशील बनाने में लगे हैं इसी प्रकार आर्य समाज के अन्य युवा नेता अपने–अपने सगठनों को इस नये वर्ष 2014 में क्रियाशील बनाना चाहिये तभी आर्य समाज की उन्नति होगी और सब मिलकर आर्य समाज का स्वर्ण युग लाने में सफल होंगे। आर्य समाजों के अधिकारी जनता से अपना सम्पर्क बनायें।

अश्विनी कुमार पाठक
सी 233 नानक पुरा,नई दिल्ली–21

****

दीपावली पर्व का वैदिक स्वरूप आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

● अर्जुनदेव चड्ढा

दीपावली का प्राचीन वैदिक नाम शारदीय नवस्येष्टि है। शारदीय अर्थात् शरद का की। नव अर्थात् नया।सस्य अर्थात् फसल।इष्टि अर्थात् यज्ञ। इसका अर्थ हुआ–शरद के अन्न से हवन करने का विधान गोभिलगृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र, आपस्तम्बीगृह्यसूत्र और मनुस्मृति में मिलता है। वैदिक काल में कृषक व जनसामान्य नए अन्न का हवन करके उसका उपभोग करते थे। यह काल वर्ष में दो बार आता था–एक बसंतकाल में और दूसरा शरदकाल में। इसे वासन्ती नवसस्येष्टि और शारदीय नवसस्येष्टि कहा जाता था। ये दोनों पर्व नई फसलों से संबंधित थे। कालान्तर में इनका नाम होली और दीपावली पड़ा। हम यहाँ केवल शारदीय नवसस्येष्टि का विवेचन करेंगे।

यह पर्व मनाने के लिए कार्तिक मास की अमावस्या तिथि ही क्यों निश्चित की गई है, जिस प्रकार आश्विन मास की पूर्णिमा की चाँदनी सर्वोत्कृष्ट होती है उसी प्रकार कार्तिक मास की अमावस्या की रात उत्कृष्ट होती है। कारण यह है कि बारह अमावस्याओं में यह अमावस्या सबसे सघन अन्धकार वाली होती है। वेद में शरद ऋतु की महिमा का उल्लेख है–"जीवेम शरदः शतं पश्येम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शत्" –हम सौ शरद ऋतुओं तक जीवित रहें, देखें, बोलें, सुनें आदि। अनेक कारणों से शरद काल की अमावस्या तिथि ऋषियों को अभीष्ट लगा होगा।

सभी जानते हैं कि वर्षा के चार महीनों में वातावरण आर्द्र बन जाता है जिससे नाना प्रकार की सड़न उत्पन्न होने से अनेक रोगों के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्षा की समाप्ति के बाद का समय मौसम परिवर्तन का होता है। उससे लोग अस्वस्थ हो जाते हैं। इन सब से बचने के लिए एवं रोगों के कीटाणुओं के शमन के लिए यह नव यज्ञ अमावस्या के दिन निश्चित किया गया। इस दिन घर–घर हवन होता था। रात में सरसों के तेल व घी के दीए जलाए जाते थे। इन दीपों के जलने से नाना रोगों के कीटाणुओं का विनाश हो जाता था और पूरा खुशी में लोग एक–दूसरे को मिष्ठान्न वितरण करते थे। जिससे परस्पर प्रेमभाव की वृद्धि होती थी। जब घर बाहर सफाई करके रात में उन्हें दीपों से सजाया जाता था तब अमावस्या की वह रात तारों की शोभा को प्राप्त होती थी। इसी शोभा को लक्ष्मी नाम दिया गया। धीरे–धीरे शारदीय नवसस्येष्टि नाम लुप्त हो गया और दीपावली नाम प्रचलन में आ गया।

हमारे ऋषि–मुनि पर्यावरणविद् थे। वे कोई ऐसा कार्य नहीं करते थे जिससे पर्यावरण की क्षति हो। इस हवन–यज्ञ के माध्यम से पर्यावरण की संशुद्धि हो जाती थी। कुछ लोग इस पर्व को रावण वध के पश्चात अयोध्या आगमन से जोड़ते हैं, किन्तु राम ने रावण का वध चैत्रमास में किया था और उसी मास में लौटे थे। तुलसीदास ने भी लिखा है–चैत्रमास चौदस तिथि आई। मरयौ दसानन जग दुःखदाई।" अतः यह पर्व राम के अयोध्या आगमन से जोड़ना युक्त नहीं है। राम के पहले भी यह पर्व मनाया जाता था, क्योंकि प्राचीन वैदिक पर्व है। वाल्मीकि रामायण में भी इस दिन राम का अयोध्या आगमन नहीं लिखा।

इसी महापर्व के दिन आधुनिक वेदोद्धारक समाज सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण हुआ था। आर्य समाज इस पर्व को निर्वाण दिवस के रूप में भी मनाता है। 30 अक्टूबर सन् 1883 ई. में मंगलवार के दिन उन्होंने इस नश्वर शरीर का परित्याग किया था। " प्रभो तेरी इच्छा पूर्ण हो" यही उनका अंतिम वाक्य था। इस पर्व के दिन पटाखे और आतिशबाजी का प्रचलन बढ़ चला है जो पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। न जाने कितनी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं, आग लग जाती है। सारी रात ध्वनि प्रदूषण होता है। वायु विषैली हो जाती है, कितने श्वास–रोगियों का दम घुटने लगता है। कितने बीमार और परेशान हो जाते हैं। इसलिए हमें पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से पटाखों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपनी खुशी व्यक्त करने के लिए परस्पर मिष्ठान्न वितरण का सहारा लेना अधिक उपयुक्त है। न जाने कितने अरबों–खरबों रूपयों को हम यों ही निरर्थक बहा देते हैं। यदि उस धन का उचित उपयोग किया जाए तो न जाने कितने लोगों को सुस्वास्थ्य मिले और धरती स्वर्ग बन जाए। प्राचीनकाल में इस पर्व के दिन पटाखे नहीं चलाए जाते थे। पता नहीं कहाँ से यह पटाखा पद्धति चल पड़ी। हम सबको इस पर विचार व मंथन करना होगा। पूरा विश्व पर्यावरण को लेकर चिंतित है। ऐसे में हम दीपावली महापर्व को पर्यावरण–प्रदूषण से मुक्त रखें तो ये देश–समाज सबका भला होगा।

इस दिन ऋषियों की परंपरा का पालन करें। घी व सरसों के दिए जलाएँ। घर–आंगन, राह, गली, मोहल्ला इन्हीं दीपों से सजाएँ। हवन माध्यम से वायु की संशुद्धि करें। अपने पड़ोसियों को मिष्ठान्न वितरित करें। पटाखे–आतिशबाजियों से बचें। तभी हम ऋषिऋण मुक्त होंगे।

4–प–28, विज्ञाननगर, कोटा
प्रधान, जिला आर्य प्रतिनिधि सभा, कोटा

☞ *पृष्ठ 09 का शेष*

एक या पांच

निकलता है कि द्रौपदी ने स्वेच्छा से, परिस्थितियों से समझौता कर, मन से पाँचों पांडवों को पति रूप में स्वीकार कर लिया था इसलिये वह सभी के साथ कुशलतापूर्वक निभा पाई। उनमें ईर्ष्या–द्वेष बढ़ने के स्थान पर सौहार्द बढ़ा। पांडवों के अन्य विवाह कर लेने पर भी ईर्ष्या–द्वेष की अग्नि अपनी सौतनों में नही जलने दी और न ही पांडवों पर उसकी पकड़ ढीली हुई।

पुनश्चः–

उपरोक्त प्रकरण विवादित है, यह जानते हुए भी मैंने, इस अल्पमति ने उस पर अपने विचार प्रकट करने का साहस किया है। विद्व नों की प्रतिक्रिया से अपनी सुरक्षा करने के विचार से निम्न पाद टिप्पणियाँ प्रस्तुत करता हूँ:–

महाभारतकालीन समाज में नर–नारी सम्बन्धों को लेकर विभिन्न उदाहरण उपलब्ध होते हैं जो यह सिद्ध करते है कि ये सम्बन्ध भी पूर्णतया बिखर चुके थे।

1– ऋषि पाराशर ने दाशराज की पुत्री सत्यवती से सहवास किया। फलस्वरूप सन्तान उत्पन्न हुई जिसे हम महाभारत के रचयिता भगवान वेदव्यास के नाम से जानते हैं। ऋषि पदवी से विभूषित व्यक्ति के इस आचरण का क्या औचित्य है?

2– कौरव नरेश शान्तनु इसी सत्यवती के रूप जाल में फंसे। युवराज देवव्रत को भीष्म प्रतिज्ञा कर न केवल राज ही त्यागना पड़ा बल्कि जीवन भर अविवाहित रहने का प्रण करना पड़ा। उच्चकुल परम्परा का सम्राट् शान्तनु इतना कामान्ध हो गया कि युवा पुत्र का जीवन नष्ट करते हुए उसे लज्जा भी नहीं आई।

3– सत्यवती ने अपनी सन्तान युवराज विचित्रवीर्य के क्षय/पीलीयारोगग्रस्त होने के कारण ऋषि पाराशर से उत्पन्न अपने पुत्र वेदव्यास को अम्बिका और अम्बालिका से नियोग (सहवास) कर सन्तान उत्पन्न की आज्ञा दी। ऋषि होते हुए भी वेदव्यास ऋषियों के लिये वर्जित इस काम को करने के लिये तैयार हो गए।

4– अम्बिका अम्बालिका और अम्बिका की दासी से वेदव्यास ने क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर उत्पन्न किए। धृतराष्ट्र–जन्मांध, पाण्डु–पीलिया या क्षय रोगग्रस्त और विदुर–दासी पुत्र।

5– जन्मान्ध धृतराष्ट्र राजा नहीं हो सकता था। पाण्डु राजा हुए और पीलिया अथवा क्षयरोग से ग्रस्त होने के कारण सन्तान उत्पन्न करने में सर्वथा असमर्थ रहे। पाण्डु की दो पत्नी थी कुन्ती और माद्री, कुन्ती कौमार्य अवस्था में ही संसर्ग कर कर्ण को जन्म दे चुकी थी। पाण्डु के असमर्थ होने के कारण उसने तीन पुरुषों से पृथक्–पृथक् संसर्ग किया और युधिष्ठिर भीम और अर्जुन उत्पन्न किए। इसी नियोग प्रक्रिया के फलस्वरूप माद्री को नकुल और सहदेव पुत्र मिले।

यह कथा रही कुरुवंश में नारियों की स्थिति की। ऐसे में किसी भी कारण से कुन्ती का पाँचों पांडवों से कृष्णा (द्रौपदी) का विवाह कराने के लिये आग्रह करना व सहमति देना आश्चर्यजनक नही लगता। कुन्ती ने तो नियोगार्थ अज्ञात अपरिचित तीन पुरुषों को अपना शरीर सौंपा कृष्णा तो विधिवत् विवाह कर पाँचों की अर्द्धांगिनी बनी, स्वेच्छा से। स्वेच्छा नही होती तो किसी में इतना सामर्थ्य नहीं था कि उसे जोर–जबरदस्ती पांचों से विवाह करना पड़ता।

योगेश्वर कृष्ण और ऋषिवर वेद व्यास स्वयंवर में उपस्थित थे योगेश्वर कृष्ण पूर्णतया कुशल राजनीतिज्ञ थे। उनके दो लक्ष्य थे पांडवों की पुनर्स्थापना और धर्म राज्य की स्थापना। इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति को माध्यम यदि उनकी बनती है तो उसकी बलि चढ़ाई जा सकती है। श्रीकृष्ण ने आपतकाल में रूकमणी का अपहरण कर उससे विवाह किया। फिर सत्यभामा और जाम्बवती से विवाह किया। रुकमणि को तो 12 वर्ष तपस्या कराकर प्रद्युम्न सुपुत्र दिया। बाकी दोनो की सन्तानें हुई या नहीं, विवरण मुझे ज्ञात नहीं है।

इस पृष्ठभूमि में एक पाण्डव से वह भी युधिष्ठिर से 'कृष्णा' का विवाह कराकर विद्व वत्जन किस शुचिता का या वैदिक परम्परा का महिमामण्डन करना चाहते हैं, मेरी समझ में नहीं आता। यदि यह विवाह केवल अर्जुन से ही हुआ था, तो इतनी माथा–पच्ची की जरूरत ही नहीं थी। युधिष्ठिर अथवा भीम का कृष्णा से दावा ही खोखला था और प्रथम दृष्टि में ही कुन्ती के द्वारा खारिज हो जाना चाहिए था।

22 नगर निगम क्वार्टर्स, जीवाजीगंज,
लश्कर ग्वालियर 474001
टेलीफोन– 07512425931

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 02-03 \12 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

हि.प्र. के राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी ने आर्य युवा समाज बी.डी.डी.ए.वी. धर्मशाला के स्टाल का किया अवकोलन

धर्मशाला में रेड–क्रॉस–सोसायटी द्वारा जिला स्तरीय मेले का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम एवं प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। आर्य युवा समाज डी.ए.वी. धर्मशाला द्वारा वैदिक मंत्रोच्चारण से मेले का शुभारंभ किया गया। मेले में युवा–समाज द्वारा वैदिक संस्कृति के प्रचार–प्रसार हेतु एक स्टॉल लगाया गया, जिसे बड़े ही सुरुचि पूर्वक ढंग से सजाया गया। आर्य युवकों ने बड़े उत्साह से चीज़ों को व्यवस्थित किया। आर्य साहित्य की प्रदर्शनी लगाई गई, जिसमें मुख्य रूप से वेद, सत्यार्थ–प्रकाश और महात्मा आनन्द स्वामी द्वारा रचित पुस्तकों तथा अन्य वैदिक साहित्य प्रदर्शित किया गया। लोगों को आर्य समाज के बारे में जानकारी देने के लिए विद्यालय के प्रधानाचार्य एस.एच.खान जी और धर्मशिक्षक मुकेश शास्त्री विशेष रूप से उपस्थित रहे। आर्य युवा समाज के सदस्यों और अध्यापकों ने अलग–अलग समूहों में दिन–भर आर्य साहित्य एवं हस्तलिखित सुविचार संकलन के हैंडबिल वितरित किए गए। समापन के समय मेले के मुख्यातिथि हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल महामहिम आचार्य देवव्रत जी ने सभी प्रदर्शनियों का निरीक्षण किया, निरीक्षण करते हुए जब आचार्य जी आर्य युवा समाज के स्टॉल पर आए तो विद्यालय के प्रधानाचार्य एस.एच.खान जी और आर्य युवा समाज के सदस्यों ने पुष्पगुच्छ भेंट कर महामहिम जी का स्वागत किया, आचार्य जी ने स्टॉल का अवलोकन किया और कहा कि मेले में इस प्रकार का वैदिक–प्रदर्शनी का आयोजन पहली बार देख रहा हूँ। आर्य युवा समाज के इस कार्य की आचार्य जी ने सराहना की , और इसी प्रकार आर्य समाज का प्रचार–प्रसार करते रहने की प्रेरणा देते हुए और अपना आशीर्वाद आर्य–युवा–समाज के सदस्यों को दिया।

खन्ना में डी.ए.वी. संस्थाओं द्वारा ऋषि दयानन्द निर्वाण दिवस मानाया गया

डी.ए.वी. संस्थाओं द्वारा खन्ना नगर में ऋषि दयानन्द निर्वाण दिवस पूर्ण श्रद्धा से मनाया गया। संस्था की मैनेजर श्रीमती सरोज कुन्दरा, प्रि. रजनी वर्मा, प्रि. अनीता वर्मा, श्रीमती सरोज भसीन, प्रधान सोमदेव आर्य, विजय मोहन भांबरी, प्रि. शाम सुन्दर तथा कार्यकारिणी तथा आर्य समाज जी. टी. रोड़ खन्ना के सदस्यों ने मुख्यातिथि श्रीमती अमरजीत कौर तथा स. सुच्चा सिंह (कैनेडा निवासी) जी का स्वागत किया। समारोह का शुभारम्भ यज्ञ के पवित्र मन्त्रों के उच्चारण से हुआ। ध्वजारोहण और ज्योति प्रज्ज्वलन के पश्चात् मैनेजर श्रीमती सरोज कुन्दरा जी ने ऋषि दयानंद जी के समाज पर किए गए उपकारों को स्मरण करते हुए कहा कि उन्होंने नारी शिक्षा, छुआ–छुत, पाखण्ड आदि कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई तथा वर्तमान नारी सशक्तिकरण का आधार बनाया।

मुख्यातिथि जी का परिचय देते हुए कहा कि श्रीमती अमरजीत कौर तथा स. सुच्चा सिंह जी अद्वितीय गुणों के स्वामी हैं। असहायों की सहायता, जरूरतमंद कन्याओं की शादी, शिक्षा के लिए दान देना तथा परमार्थ इनके जीवन का परम लक्ष्य है। असंख्य गुणों के स्वामी होने के बावजूद भी वे विनम्रता की मूर्ति हैं। दीवाली की बधाई देते हुए उन्होंने माननीय श्री पूनम सूरी जी प्रधान डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली का संदेश उपस्थित जनों को सुनाया कि दीवाली को पटाखों रहित मनाकर पर्यावरण कोसुरक्षित रखें। इस अवसर पर मुख्यातिथि द्वारा हिन्दी पुत्री पाठशाला सी.सै. की वार्षिक रिर्पोट 2014–15 का विमोचन किया गया।

डी.ए.वी. संस्थाओं के छात्र/छात्राओं की भजन–गायन और कविता उच्चारण प्रतियोगिता करवाई गई। मुख्यातिथि ने अपने कर कमलों से विजेता विद्यार्थियों को पुरस्कार वितरित किए।

श्री सोमदेव आर्य जी ने जीवन में ब्रह्मचर्य, संयम और अनुशासन क महत्व को बताया तथा आए हुए मेहमानों का धन्यवाद किया।

डी.ए.वी. सेन्टेनरी पब्लिक स्कूल, हरिद्वार में तीन दिवसीय वैदिक चेतना सम्मेलन

डी.ए.वी. जगजीतपुर, हरिद्वार में वेद प्रचार एवं हेतु तीन दिवसीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों ने मंत्रोच्चारण, समूह एवं एकल, नृत्य एवं नृत्य–नाटिकाओं का अद्भुत प्रदर्शन कर उपस्थित जनों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्यअतिथि श्री वेद प्रकाश शास्त्री जी द्वारा दीप प्रज्ज्वलन द्वारा किया गया। कक्षा पाँच के विद्यार्थियों ने आगन्तुकों का स्वागत एक गीत द्वारा किया। तत्पश्चात् संगठन सूक्त को नन्हीं बालिकाओं ने नृत्य मुद्राओं द्वारा समझाया तो सारा प्रांगण तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। कक्षा प्रथम के नन्हें छात्रों ने जब मंत्रोच्चारण किया तो सारा वातावरण भक्तिमय हो गया। विद्यालय के संगीत शिक्षकों के भजनों ने भी खूब तालियां बटोरी।

विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत नाटिका–ईश्वर कहाँ है? ने उपस्थितजनों को यह फिर से जता दिया कि ईश्वर इस सृष्टि के कण–कण में मौजूद है।

पंतजलि से आए योग शिक्षक श्री सचिन आर्य ने 'भारतीय संस्कृति में योग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए अभिभावकों एवं शिक्षकों को कई प्रकार के योगासनों के बारे में विस्तार से बताया। मुख्यातिथि श्री वेद प्रकाश शास्त्री जी ने वेद और संस्कृति की व्याख्या करते हुए तीन ज्योतियों के बारे में बताया कि कार्यक्रम में बच्चों ने प्रकृति संरक्षण का संदेश एक नृत्य द्वारा दिया।

मुख्यातिथि श्री दीनु दयालु शास्त्री ने कहा कि वेद एवं भारतीय संस्कृति को पृथक् नहीं किया जा सकता।

विद्यार्थियों ने ओंकार परिचय एक समूह गान के रूप में दिया। स्वामी दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन चित्रण नृत्य नाटिका द्वारा दर्शाया गया। मुख्यातिथि श्री भारत भूषण विद्यालंकार जी ने कहा कि माता पिता के द्वारा संतान को जन्म दिया जाता है, लेकिन वह आचार्य द्वारा ज्ञान अर्जित करके ही विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाता है। एक गुरु की दी हुई शिक्षा से शिष्य सर्वदा अपने पथ पर आगे और आगे बढ़ता जाता है।

प्रधानाचार्य श्री पी.सी. पुरोहित जी ने सभी अतिथियों एवं अभिभावकों का अपना अमूल्य समय देने के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। उन्होंने बताया कि श्री पूनम सूरी जी, प्रधान, डी.ए.वी. प्रबन्धकर्तृ समिति, निर्देशन में इस तरह के कार्यक्रम डी.ए.वी संस्थाएं कर रही हैं।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**